





### शृंगारी काव्य :

शृंग हि मन्मथोद्भेद स्तदागमन हेतुकः ।  
उत्तम प्रकृतिप्रायो रस शृंगार इष्यते ॥

अर्थात् काम के उद्भेद(अंकुरित होने) को शृंग कहते हैं । उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस शृंगार कहलाता है ।<sup>1</sup>

मानव हृदय प्रेम से आपूरित है । प्रेम स्वयम् ~~विशेष~~ में बहुत ही व्यापक है । प्रेम के कई रूप हैं जिनमें से दांपत्य-प्रेम विशेष महत्व रखता है । इसी प्रेम पर संसार का विकास सम्भव है । दाम्पत्य प्रेम में पति-पत्नी की निकटता अत्यन्त आवश्यक है । प्रेमी और प्रेमिका अथवा पति-पत्नी इसके आलम्बन हैं । यह प्रेम-भावना बहुत ही उदात्त भावना है । यह दोनों के परस्पर सहयोग तथा त्याग पर आधारित है । स्त्री-पुरुष के मधुर सम्बंधों की व्याख्या करनेवाला यही प्रेम है । किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि जो कुछ लोक में पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल एवं दर्शनीय है वह शृंगार रस कहलाता है ।<sup>2</sup> मानव ही नहीं पशु जगत् भी इस भावना से शून्य नहीं । प्रेम आलम्बन प्रत्येक के लिए भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। बड़ी से बड़ी अच्छी से अच्छी यहाँ तक कि छोटी से छोटी, गन्दी से गन्दी निकृष्ट से निकृष्ट वस्तुओं से भी प्रेमी प्रेम करता है । प्रेमी उस मार्ग की भी धूलि सिर पर रखता है जिससे प्रिय गया होता है । वह प्रिय की दी हुई सड़ी-गली और सूखी माला सानन्द धारण कर रहा है ।<sup>3</sup> प्रेमी वस्तु की उच्चता पर ध्यान नहीं देता मात्र उसके प्रति अपनी भावना समर्पित कर रहा है ।

- 1- हिंदी का समस्यापूर्ति काव्य- डॉ० आशंकर शुक्ल, पृ० 34।
- 2- यत्किंचिल्लोके शुभमेवमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते ।  
वही, पृ० 340 से उद्धृत ।
- 3- बिहारी-विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 117

अन्य कालों में श्रृंगार को उदात्तता के रूप में ही चित्रित किया जाता रहा है। उनके आलम्बन ईश्वर ही रहे परन्तु रीतिकाल में आने पर उसका रूप परिवर्तित हो गया। इस युग में श्रृंगार को रसरत्नत्व प्राप्त हुआ। श्रृंगार का रूप अलौकिक न रहकर लौकिक हो गया। रीतिकालीन कवियों ने वैष्णव कवियों के राधाकृष्ण के नामरूप को अपने काव्य में स्थान दिया लेकिन राधाकृष्ण के प्रति उनके मन में वह एकांतिक भक्तिभाव न था जो सुर, नन्ददास, आदि कवियों में दिखाई पड़ता है। अतः इस काल के कवियों के हाथ में पड़कर कृष्ण-विषयक अलौकिक मधुरा रति लौकिक रति में बदल गई।<sup>1</sup> इस युग में राधाकृष्ण भक्ति-भावना के ब्योक्तक न रहकर प्रेम (विशुद्ध श्रृंगारिक) भावना के ब्योक्तक रह गये।

कुँवरकुशल रीतिकालीन कवि है इसलिए इनका काव्य भी इन्हीं विशेषताओं से सम्पृक्त है। यहाँ पर भी श्रृंगार का लौकिक स्वरूप ही वृष्टिगत होता है। नायक और नायिका के रूप में कृष्ण और राधा वर्णित हुए हैं। इन्होंने श्रृंगार के दोनों पदों का चित्रण किया है। सर्वप्रथम इनके श्रृंगार के संयोग पदा पर विचार करेंगे -

हृदय में प्रेम भावना को उद्बुध करने के लिए शारीरिक आकर्षण का बड़ा महत्व है। शारीरिक आकर्षण के कारण ही कोई व्यक्ति प्रिय लगने लगता है और हृदय में प्रेम का आविर्भाव होता है। रीतिकालीन प्रेम पूर्णतः शरीर पर आधारित है। यह प्रेम न तो शौर्य के कारण होता है और न ही मानसिक घरातल पर प्रतिष्ठित होता है। रीतिकालीन प्रेम घरेली के स्त्री-पुरुष का प्रेम है जिसका आधार है रूप और यौवन।<sup>2</sup> यहाँ पर शारीरिक सौन्दर्य की ही

1- रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना- डॉ० लच्चनसिंह, पृ० 43

2- वही- पृ० 133

प्रधानता रही है। किसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण, स्मृति या कल्पना से अनुभूत्यात्मक आनन्द की प्रतीति होती है। वस्तु के जिस गुण से यह आनन्द प्रादुर्भूत होता है उसे सौन्दर्य कहते हैं।<sup>1</sup> रीतिकालीन सौन्दर्य वर्णन अधिकांशतः शरीर के विभिन्न अंगों उपांगों पर अवलंबित रहा है। जिसमें कहीं एक-एक अंग का अलग-अलग वर्णन है तो कहीं एक साथ समस्त शरीर का अर्थात् नखशिख रूप में चित्रण किया गया है। दोनों प्रकार के सौन्दर्य चित्रण कुँवरकुशल ने भी किए हैं। कहीं पर केवल किसी अंग का वर्णन है तो कहीं पर उसके समस्त शरीर के सौन्दर्य को अंकित किया गया है।

नायिका का नखशिख वर्णन करते हुए कुँवरकुशल कहते हैं -

मुख ससि लै नीकौ महा धनु माँह धरी है ।  
 द्वा मृग मीतै विप्रै, पुतरी सुपरी है ।  
 सुक चंचा नासा सही, लखि अघर ललाह ।  
 दात हीर से देखियै बिच पंति बनह ।  
 कुहक कोकिला कंठ की, कंबु गल कहियै ।  
 कुँव चक्रा से जानि कै प्रबलीतरल हियै ।  
 कटि केहरि अहस्य करी गति हंस गनाह ॥  
 ऐसी लखि राधे अली कियप्रीति कन्हह ॥<sup>2</sup>

एक अन्य स्थान पर भी ऐसा ही बताया गया है -

1- . रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना-डॉ० बन्वनसिंह, पृ० 133

2- ल. ज. सि० चतुर्दश तरंग, कन्द सं० 292

चरन पै कमल ओ जंघ के केलि तरु केसरी लंक कटि पै उतारो ।  
 नाभि दरद किये कुचीनि परबत कलस कंठ पै कोकिला कंबु टारो ।  
 अघर से लाल ये बिंब पर बाल नही' दसन हीर कन और दारो ।  
 नासिका कीर मृग मीन दृष्टा णंनै राधिका बदन पै चंद वारो ॥<sup>1</sup>  
 आनन सौ लणि चंद अकास मे नैन से पंकज देखत है निति ॥  
 पैन ~~कलस~~ से काम के बान है बैन मिठास है अमृत मै सति ॥  
 दंत से हीरा अनार के दाने और ओठ ललह की फुंगहि छुति ॥  
 राधे के आँ सौ रंग कौ आँ अली लणि पायनि की गजमै गति ॥<sup>2</sup>

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं ।<sup>3</sup>

एक अन्य स्थान पर उसके सौंदर्य को उसकी विशेषताओं सहित निर्देशित  
 करने का प्रयास किया गया है । नायिका किशोरी है, हल्का हल्का मुस्कराती  
 है जिसकी मोली बातें सुनने के लिए मन फिर से चाहता करने लगता है प्रेम रूपी  
 पालने की डोरी को लिये हुए जिसके मुख के बोल अमृत सरीसे मीठे हैं वृषभानु  
 की पुत्री चतुर है जिसकी चाल के आगे हंस की चाल का कोई महत्व नहीं रह  
 जाता है । सोने के समान गोरा, उज्ज्वल शरीर, मछली की तरह चंचल चरण  
 तथा चन्द्रमा के समान मुख को देखते ही बनता है -

1- ल. ज. सिं० चतुर्दश तरंग, कृन्द सं० 648

2- वही - प्र. त. कृन्द सं० 41

3- वही - कृन्द सं० 45, 49, 56

वैस की क्विसोरी थोरी थोरी मुंसिब्यांजि ठांनि,  
 मोरी मोरी बातें सुनिबे कौ फेरि बहियै ॥  
 धेम फलनां की डोरी नेक की लगावे डोरी,  
 मुष्ण बैनु सौं मिठासु सुधा ही मै लहियै ॥  
 चातुरी सरस साजि लली, वृष्णमान लली,  
 याकी चाल आगै हंस चाल कहा कहियै ॥  
 कंचन सौं गोरो तन फाज से बपल चरन,  
 ससि के सरूप मुष्ण देणत ही रहियै ॥<sup>1</sup>

नायिका का रूप सखियों की चर्चा का भी विषय बन गया है। इसलिए एक सखी दूसरी सखी से उसके सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए कहती है कि कज्जलयुक्त नेत्रों के आगे तो कमल और संजन फली भी दूर भागते हैं, शरीर परमात की तरह सुहाता है और बातों के द्वारा सखियों को आती है (यहाँपर उसकी वाक्-चातुर्यता का गुण बतलाया है) नायक द्वारा दी गई बनमाला हृदय पर सुशोभित हो रही है ( यहाँ पर नायिका के प्रति नायक के प्रेम का उद्घाटन हो रहा है क्योंकि प्रेम होने पर ही वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है। प्रिय की वस्तु भी प्रिय लगती है ऐसा सम्भर कर वह सहेज कर रखी जाती है) लाज के साज अर्थात् पूर्ण लज्जावती नायक नायिका सुन्दर तथा भली लगती है<sup>2</sup>

1- ल. ज. सिं०, <sup>प्र. त.</sup> कन्द सं० 19

2- अंजन मंजन नैन सुरंजन कंजन ~~अंजन~~ दूर भौं ।  
 गत सुहात भयै परमात सुबात की घाट सखीन सगै ॥  
 लाल क्व बनमाल बिसाल ते रूप रसालहिये पै जगै ।  
 लाज के साज बनी सिरताज भै नायुकी बालकीनीकी लगै ॥

वही <sup>द. त.</sup> कन्द सं० 13

इसी कारण तो नायिका(राधा) सभी गोपियों का सरदार है जिसको सुन्दर कान्ह प्रिय के रूप में मिले हैं ।<sup>1</sup> फिर ऐसी नायिका के शरीर की कांति का क्या कहना । इसके शरीर की बराबरी सोना नहीं कर सकता चाहे उसे लाख अग्नियों में क्यों न तपाया जाये ।<sup>2</sup>

इसके अतिरिक्त कुँवरकुशल ने अलग-अलग छन्दों में अलग-अलग आँगों को भी उपमानित किया है । स्यामा नायिका का मुख बहुत ही सुन्दर है जिसमें तारु रूपी नेत्र शोभा देते हैं और रसिकों के हृदय भी उल्लसित करते हैं ।<sup>3</sup> यों तो नायिका के सभी आँ शोभायमान होते हैं परन्तु मुख की कांति तो चतुरों के मन को ललायित करती रहती है ।<sup>4</sup> नायिका की आँखें और पंज सरस मुख की कृबि नायक को बहुत ही सुहाती है ।<sup>5</sup> नायिका के अंघ्र ही अमृत और मुख ही चन्द्रमा की तरह मधुर और उज्ज्वल है तो फिर विधाता ने अमृत और चन्द्रमा

- 
- 1- राधे रूपवती चतुर पूरन कला प्रमान ।  
सब गोपी सिरदार किय कंत मिले सुमकान्ह ॥ वही, <sup>अ.त.</sup> छन्द सं० 107
- 2- कहत हेम सम काद्य तुज बादहिं बकत विगोह ।  
लाख आनि भूषा कनक ले सही न तुवरंग साथे ॥ ल. ज. सि० अष्ट तरंग, सं० 94
- 3- स्यामा आनन सोभ शुभ तारनि शोभा देत ।  
रसिकन के कुँअरेस में दियै बढावै हेत ॥ वही छन्द सं० 96
- 4- स्यामा के सब आँ की शोभा लणी सवाय ।  
बदन कांति मन बस रही चातुर की ललाय ॥ वही, <sup>अ.त.</sup> छन्द सं० 124
- 5- स्याम को सुहाति सदा अंघ्रियासिराति अति पंज सरस कृबि देणि राधे  
मुष्की ।  
वही- <sup>अ.त.</sup> छन्द सं० 126

का सृजन करने का व्यर्थ ही कष्ट व्यर्थ किया ।<sup>1</sup> ऐसी सौन्दर्य पूर्ण नायिका थोड़े ही दिनों में शृंगार की म्यादा तक जा पहुँकी अर्थात् और भी विकसित होकर अत्यन्त ही सुन्दर हो जायेगी ।<sup>2</sup> ऐसी सुन्दर स्यामा को देखकर सभी का मन प्रसन्न हो जाता है इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं -

साँचो जिय मैं सुख भयो स्यामा ॥ सूरति सल ॥<sup>3</sup>

जब नायिका इतनी गुणसम्पन्न, सुन्दर, उज्ज्वल तनवाली है तो फिर नायक किस प्रकार सुन्दर हो सकता है । नायक भी ऐसा ही सुन्दर तथा नायिका के उपयुक्त होना चाहिये जैसी कि नायिका है । इसलिए कवियों ने जहाँ नायिका के रूप का चित्रण किया है वही नायक का रूप चित्रण भी हुआ है । कुँवरकुशल भी इसी परिपाटी के अनुगामी हैं । इन्होंने भी नायक के रूप का वर्णन किया है । कुँवरकुशल ने नायक के रूप चित्रण के साथ-साथ नायिका के कथन की अभिलाषा भी साथ में ही व्यक्त की है ।<sup>4</sup>

नायक की कृषि को देखकर नायिका को उसी प्रकार का सुख प्राप्त होता है जिस प्रकार बरसात के समय बादलों को देखकर मारे आनंदित होते हैं अथवा कमल

- 1- अमृत जुवती के अघर सुभ मुखचंद सुभाय ।  
वृथा जु श्रम विधि व्यर्थ कियो अमृत चन्द्र उपजाय ॥ वही-<sup>प्र.त.</sup> अ.क. सं० 33
- 2- मिनै दिग्गनि मैं होइगी सीमा सरस सिंगार ।  
वही-<sup>प्र.त.</sup> अ.क. सं० 64
- 3- ल ज सिं० अ त कू० सं० 34
- 4- पीत पटा कटि में लपटा कृषि लाल कृटा गल गुंज की माला ।  
है सुषा कंद सदा जग बंद अनंद भरे यह नंद के लाला ॥  
आथ है आज सुधारन काज सिरी महाराज लिये संग ग्वाला ।  
देषि अली द्रिा पंकज तै मुषाचंद तै बोलैगी राधि के बाला ॥  
वही-<sup>प्र.त.</sup> अ.क. सं० 65

को देखकर भौरे प्रसन्न होते हैं ।<sup>1</sup> नायक का प्रभावशाली स्वरूप देखकर नायिका के पैरों की गति ही कुछ और हो जाती है क्योंकि नायक के नेत्रों का कटाका और मन की मति ही कुछ और है, मुख की कृबि और शरीर की कांति ही कुछ और है, शरीर पर ओढ़ा हुआ वस्त्र तथा आभूषणों की कृबि भी अपना सौन्दर्य रखते हैं ।<sup>2</sup> जब से कृष्ण मीत बने हैं तब से राधा में भी परिवर्तन आ गया है -

आंन आं समात नहीं बहु रंक रे सणि संग न होरे ॥

आरसी में मुष्ण देष्ण ह्से उल्लस अलि देष्ण तू असे निहारे ॥

मूष्णन भेस बनावे मली विधि तीष्णी चितानितै चित को चारे ॥

मोहन मित भये जब तै तब तै भयो राधे सुभासु ओरे ॥<sup>3</sup>

शृंगारिक काव्य में जहाँ नायक और नायिका का महत्वपूर्ण स्थान है वहाँ सखी और दूती का भी अपना विशिष्ट स्थान है । नायक और नायिका को परस्पर आकर्षित कराना, दोनों के मिलन में सहायक सिद्ध होना, एक के हठने पर उसे मनवाना, सन्देश ले जाना आदि कार्य सखी और दूती ही करती रही है । रीतिकालीन काव्य में ऐसे अनेक दृष्टान्त देखे जा सकते हैं । कुँवरकुशल के काव्य में भी इन सबका चित्रण हुआ है । नायक के मन में भी इच्छा होती है तो नायिका

1- मह समय लखि मोर घन किय होर ज्यों सरोज लखि मोरहि ।

प्यारो सुख कृबि पाय अंसुहाय त्यों दृग देखु दारहि ॥

ल. ज. सिं० चतुर्विंश तरंग, कन्द सं० 192

2- ओरे कटाक है नैननि के कहिओरे कछू मति है मन की ॥

भौरे कछू कृबि आनन की लणि ओरेहि दीपति है तनकी ॥

ओरे अमूल दुकूल की ओढनी ओरे भू कृबि मूष्णन की ॥

मोहन लाल बिलोकिये बाल ये ओरेभू गति पायन की ॥ वही, कं० सं० 101

3- वही - कन्द सं० 122

के पास जाकर उसे दूती द्वारा बुलवा लिया जाता है -

भेजी है पीय तिया इकु चातुर बैठि बिय की बातें बनाह ॥  
 आनि के काम की छातेने अनेक बषानि किये रुचि को उपनाह ॥  
 ह्वै है मलों पिय पास क्लो नु मिली हित सौ रस की सरसाह ॥  
 चाहि हुती चित में नंदलाल के दूती बुलाय के वाही को लाह ॥<sup>1</sup>

नायक द्वारा चित्र ले जाकर नायिका के मन में प्रेम उत्पन्न करना भी सखी का ही काम है -

इन्द्र के गंधर्व को सुम चित्र बनायो है अपनी बुधि कीनी ॥  
 कान्ह सुजान सषी को कह्यो राह राधे को जाय के देहु प्रवीनी ॥  
 अहं वहै वृषामान लली यह देखिके चित्र महारस भीनी ॥  
 गंधर्व चित्र के <sup>सीस</sup> छेदी चढ़ाय अलीकर पै फिरी दीनी ॥<sup>2</sup>

सखी रति गमन के लिए स्वयं ही नायिका को जाने हेतु कहती है।<sup>3</sup>  
 परन्तु नायिका को डर लगता है कि कृष्ण का साँवला रंग स्वयं उसे भी साँवला  
 न बना दे परन्तु यहाँ पर भी सखी उसे समझाते हुए कहती है -

माधव संग मैं राधिका सेज पै आनि सुवाह ॥ है धाय नु मोटी ॥  
 ओ सौं ओं लगावति नाहिन देखै सषी इनि काय आंटी ॥  
 साँवरे रंग तैं साँवरे हहेयै बात सिषाह ॥ सषी किहि षांटी ॥  
 रंग क्सांटी पै सोना को लागत सोना पै रंगन लगे क्सांटी ॥<sup>4</sup>

1- ल. न. सि० अ. कन्द सं० 183

2- वही - कन्द सं० 92

3- यह गजगामिनि सीखे सुनो यह चंकर लोचन चंदमुणी ॥

तू तन जोवन जा तन जानत सेज क्लो पिय होत सुखी ॥

वही - चतुर्विंश तरंग-कन्द सं० 234

4- वही - अ. त. कन्द सं० 201

इतना ही नहीं, नायिका जब मान करती है तब भी व्यर्थ का हठ छोड़ने के लिए सखी कहती है -

रूप करि रसीली हठ छाँडि दै हठीली गति गहाँ गरबीली ॥ प्रीति निरमल  
की ।

तजि अप्सोस दूर करियै जु रोसराधे दोस मरी बात करै बानि कहा हलकी ।  
रसिक सुजान कान्ह ताहि दीजै मान प्यारी बान ये निदान मेरी तेरे  
सुभफल की ।

झिा तारे लोल छषट रूपो मुष के है बाल तेरे धरत कपोल फाँह केतकी  
के दल की ॥<sup>1</sup>

जब नायिका श्रृंगार करके प्रिय मिलन के लिए जाती है, रास्तेमें चौदनी आ जाने के कारण दिखने का डर लगने लगा तब सखी यही सलाह देती है कि अंधारी गली में से जाना चाहिये । ऐसा कहकर कंधे से पकड़कर ऐसे रास्ते पर ला खड़ा किया जहाँ कोई देख न सके और उसकी लज्जा रख ली ।<sup>2</sup> परन्तु एक स्थान पर नायिका किसी की मोहताज नहीं । जब सखी उसे समझाती है तब भी वह काम को ही अपना सहायक जानकर उसकी सहायता लेने से इंकार कर देती है ।<sup>3</sup>

-----  
1- ल. ज. सि० प्र०, क० सं० 87

2- स्याम को आयो स्याम ही सिंगार ठायो मृगमद लाययो लेप तन में उकाहरी ।  
आधे माचलि अहँ चंद्रमा कहँ दिशाहँ चका में ह्वै लषाहँ करै अब काहरी ।  
तब सषी बोली प्यारी भौर भीरि टोली मारी गली में अंधारी चलि और  
सखी कंध बाँह कहँ लाज राषि लहँ कहँ आनिठाढी भहँ जहाँ राह दषा  
नाहरी ॥  
न. सलाहरी ॥

वही - क० सं० 205  
3- पकृत सहली वृज गहली में अकेली चली साथ न सहली तेहँ मन कहा आहँ है ।  
स्याम का संदेशो ताहि कसो आया कहा मोहि राणा कहा गाहँ ऐसी बानी  
राति है अंधारी कहँ सुभक्त न मेरी प्यारी ओढी स्याम सारी कबि नीकि  
कहामहँ है ॥  
पै दिशाहँ है ।

फूल की कमान और फूल ही के पाँचों बान असो कामरान मेरे राह में सदाहँ है  
वही - क० सं० 208

सखियाँ बड़ी ही चतुर होती हैं। जब नायिका श्रृंगार करती है और सखी को कुछ नहीं बताती तब भी सखी बिना बताये ही नायिका के उद्देश्य को जान जाती है, उसने श्रृंगार क्यों किया है इससे भली भाँति परिचित हो जाती है -

कस सुघारि के पाछिये पारि के मोह्यषारिके बैदी लगह ॥  
 अंन डारि के सारि सवारि विथारि के अँढनि पान ललह ॥  
 आनि आरस पायो महा रस कंक की बंद छविबंधह ॥  
 बैसिसि रीति सौ आवत राधिके जानि गह ॥ सखी चतुरह ॥<sup>1</sup>

पिय को आकर्षित करने के लिए किसी एक ही विशेषता का होना पर्याप्त है। नायिका के बोलने का ढंग भी नायक के मन को हर लेता है।<sup>2</sup> दूसरी ओर नायक (कृष्ण) भी मन को अँके लाते हैं।<sup>3</sup> इसी कारण नायिका शुभ चैत्र की उज्ज्वल रात्रि में जब फूल की सुशुभ प्रवाहित हो रही हो, मदमस्त हो, ऐसे समय में वह आकाँक्षा करती है कि पिय के संग कब सुख की प्राप्ति होगी।<sup>4</sup> दोनों में परस्पर आकर्षण होने पर नायक नायिका की चुहल बानी भी शुरू हो जाती है। इस परस्पर चुहल का कुँवरकुशल ने सुन्दर चित्रण किया है -

- 
- 1- ल. न. सिं०, प्र. त. छन्द सं० 90  
 2- बैननिते बस की न्हौ मोहन तुव गेह राधिका रानी ।  
 हरि कोमन हर लीन्हौ सीखी यह कौन पैनु तुम सुघराह ॥  
 वही - पंचदश तरंग, छन्द सं० 544  
 3- ये लषि आली मोहन आये हे बनमाली मोमन माये ।  
 वही - छन्द सं० 714  
 4- सुभ चैत बंद उजास मदपान फूल सुबास ।  
 सुषा सेज पै पिय संग रचि हो बसके विधि रंग ॥  
 वही - छन्द सं० 774

"पट शैवत ही भगरो करिबै कटिको कहुं कूटि गयो पियरो पट ।  
 तट की तनियानां फरनां दुनिया बहु राउरी निद चवली जमुना तट ।  
 नट बोन करो क्ल घात घरो हम जानिये मोहन चातुर हो नट ।  
 बट में मिलिगी मनभावन वे मुष चूमि कै जाय हरे बंसरी बट ॥<sup>1</sup>

इसी प्रकार का चित्रण सूरदास ने दान्दलीला के प्रसंग में भी किया है । इस प्रकार की शरारत से प्रेम धीरे-धीरे पूर्ण अवस्था को प्राप्त होता जाता है । और प्रगाढ़ तल्लीनता आती जाती है जिसके परिणामस्वरूप आठों याम प्रिय के रंग में ही रंगी रहती है ।<sup>2</sup> यों तो हर नायक अपनी नायिका को सजा सँवरा हुआ देखना चाहता है क्योंकि सजने सँवरने से उसकी प्रियतमा का सौंदर्य और भी अधिक निखर उठता है । परन्तु कभी-कभी यह भी विचार उसके मन में आता है उसका शृंगार स्वयं अपने हाथों से करे और अपनी इस इच्छा की पूर्ति भी करता है ।<sup>3</sup> जब प्रेम प्रगाढ़ता का स्वरूप धारण कर लेता है तब प्रिय के साथ अधिक अधिक समय न सही केवल दो पल ही गुजारने को मिल जाते हैं ~~अ~~ तब वे दो पल भी मानो बहुत अधिक हो जाते हैं ।<sup>4</sup> प्रिय के आने से पहले उससे मले ही कितना ही

1- वही - कन्द सं० 684  
 2- नैकहं मन में धरति नहिं और बात आँ आँ ।

आनें जाम यह तिया रचन पीय सौं ठं रंग ॥

ल. ज. सि०, कन्द सं० 16

3- बैठे अष्टानि पै नैन कटाकनि लै दुपटा निज अंक बिछायौ ॥  
 सीस पै मोती की सोभ करि सुभसीस कौ फूल सौं कस छिपायौ ॥  
 बीराव्यौ सुक के मुषा में घसि बावना चंदन आँ लायौ ॥  
 मोहन कौ वृषमान लली सिगरी <sup>पारो</sup> बियम हूष तै समफायौ ॥

वही - कन्द सं० 91

4- सुषो लणि संसार यह सब कहं रहत नहिं कोय ।  
 कंत संग मनभायौ कीजै हरण घटी वह होइ ॥

वही - <sup>स. त.</sup> कन्द सं० 3

रोग क्यो न किया गया हो परन्तु प्रिय को देखते ही समी गिले शिक्वे भूल जाते हैं उसके प्रति मन में समस्त प्र प्यार उमड़ पड़ता है। चाहे किसी स्त्री के सुने हुए शब्द ही क्यो न हों, मन में उत्पन्न हुआ खेद दाण भर में समाप्त हो जाता है।<sup>1</sup> प्रेमिका चाहती है कि उसका प्रिय सदैव उसके पास ही रहे (और यह स्वाभाविक भी है कि जिसे हम चाहते हैं उसे सदैव अपनी आँखों के समक्ष देखना चाहते हैं) क्योकि उसके दर्शन की अभिलाषा न देखने पर होती है और जब दर्शन हो जाते हैं तब बिछुड़ने का दुःख होता है। दोनों स्थितियों में ही दुःख बना रहता है। इसलिए सदैव पास रहने पर दुःख समाप्त हो जायेगा।<sup>2</sup> शरद-रात्रि में कृष्ण राधा के घर आते हैं तो राधा मन में बड़ी प्रसन्न होती है तब उस संयोगकालीन स्थिति का चित्रण बड़े ही सूक्ष्म ढंग से किया है। देखिए -

शरद की पुन्यरात्रि कान्ह आये राधिका के मंदिर मुदित मनभाह भूँ बात है।  
हाथ जोरि जोरि सौरि सौरि मीठी बातें करै चुंबन करत चित चाहि सरसात है।  
मिलै णिलै रंग हिलै आँ आँ में उमंग अंक भरै आपस में क्यो हूँ न अघात है।  
पीय मुष्णि अघे देष्णि पीया परसन्न होत पीया मुष्ण देष्णि पीय नैन कृकि छपलौं छ  
जात है।<sup>3</sup>

संगीत भी प्रेमाकर्षण में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। गाना सुनकर

- 
- 1- बँन सुने कहुँ बावरी णारौ चित मै षेद ॥  
नेह भरे पिय नैन लष्णि भूलि गइँ सब भेद ॥ वही <sup>ज.न.</sup> कन्द सं० 72
- 2- अनदेणे प्रसन की इच्छा देणे वियोग <sup>दुष्ण</sup> ।  
देणे अनदेणे ही दुष्ण मै रहै हमारी रूप्य ॥  
वही <sup>स.न.</sup> कन्द सं० 18
- 3- ल. न. सि०, षष्ठ तरंग, कन्द सं० 9

भी किसी का मन आकर्षित हो सकता है। ऐसा ही राधा के साथ हुआ, जब गोपियों ने मिलकर गोधन गाया, यह अच्छा ही हुआ जिससे प्रिय के मन में प्रेमोत्पन्न हुआ, फलस्वरूप प्रिय को स्पर्श करने की कामना मन में उत्पन्न हुई। जब वह घर को गृह तो कृष्ण भी चुपके-चुपके उसके पीछे चले परन्तु नायिका भी कुछ कम नहीं। कृष्ण को देखकर ओट में से उसे अंठा दिखा दिया -

भयों भलीबिधि मोहनि के मन ग्वालिनिय। मिलि गोधन गायौ ॥  
कान्ह के चित चुन्यौ वह गान सौ गोपी के गात सौ गात कुबायौ ॥  
ग्वालि चली घर पीछे हरिऔ चुपचाप तैं द्वार लौ आयौ ॥  
नैननि सौ लषि मांफि गृह फिर ओटि कीयै नू अंठा दिषायौ ॥<sup>1</sup>

संयोगावस्था में गोपाल को जब रंग में आते देखती हैं तब गोपियों का गण कुछ प्रकार घेर लेता है जिस प्रकार चौद तारों से घिर जाता है।<sup>2</sup> रीतिकालीन नायिका शमीली, लजीली नहीं वरन् वह स्वयं ही नायक को अपनी ओर आकर्षित करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करती। नायक को देखकर अनेक प्रकार की चेष्टायें करती हैं ताकि नायक उसकी चेष्टाओं को देखकर उन्हें समझ सके। ऐसा ही चित्रण यहाँ पर किया गया है -

भवन के द्वार परी अरु कौ फसारि पाकै लये है उसारि कसी करी चतुराह है।  
सीस कौ बसन षौचि घूँघटा कियो है आगै नैननि कौ मूँदि ग्रीवा नीचे कौ नवह है।

1- वही-<sup>प्र.त.</sup>कृन्द सं० 155

2- हेरो री तुम हेरो आवै गोपाल रंग में।  
ऐसे गोपी के मन घेरौ जैसे परिवेषण में चंदा ॥

वही- पंचदश तरंग, कृन्द-478

मुष्ण मौन राशि बाहु लता को विचार करि फेरि जोरि लई बात दुहुं मन आहै ।  
मदन गुपाल जू कौ दूरि ही तै देखत ही खेसटा दिषाय राधे बात समझाहै ॥<sup>1</sup>

रीतिकालीन काव्य जहाँ स्वकीया पदा को लेकर चला है वहीं दूसरी ओर परकीया पदा को भी समान रूप से मान्यता दी गई है । नायक-नायिका का संयोग शृंगार निरूपित किया गया है वहीं पर परस्त्रीगमन और परपुरुष गमन के भी चित्र अंकित किए गए हैं । नायिका अपनी सखी को सन्देश देकर नायक के पास भेजती है । परन्तु वह उसी के साथ सम्भोग करके वापस आती है तब नायिका व्यंग्य के द्वारा उसकी स्थिति को स्पष्ट करती है जिसे अच्छी तरह अभिव्यक्त किया है ।<sup>2</sup> एक अन्य उक्ति भी दर्शनीय है -

कान्ह कुंजर की षबैरि कौ गह तहां गुन गेह ।  
राते बसन किये रुचिर नैननि कौ करि नेह ॥<sup>3</sup>

इसी प्रकार नायक जब अन्य स्त्री के साथ रात व्यतीत करने के बाद प्रातःकाल नायिका के पास आता है तब नायिका यही कहती है कि कृपा करके प्रातःकाल में आये हो ।<sup>4</sup> इसी तरह नायिका कृष्ण के वस्त्रों तथा केशों की अत-

1- ल. ज. सिं०, सुत-द-15

2- है उपगार कौ देह तिहारियै या जग में तुअ बात प्रमानहिं ।  
नेह जनायो भलो हमसों हम जानी है तो में बडो है सयानहि ॥  
आ पसीना भयो अति देरिबै जान्यो उहां न मिले कहं कानहि ।  
सचि ओइ सील भरी है सदा सही मंद कीये सब काम के बानहि ॥  
वही - सुत-द सं० 9

3- वही - सुत-द सं० 92

4- बात कहत तुतरावत हो बलि गुरुता लीन्है गात ॥  
मली करी मनभावन मोपै पियआये परभात ॥

ल. ज. सिं०, सुत-द सं० 16

व्यस्तता देखकर भी व्यंग्यपूर्वक ही उपालम्भ देते हुए जो कुछ कहती है उसका सुन्दर चित्रण किया गया है।<sup>1</sup> एक अन्य स्थान पर भी सुन्दर चित्रण किया गया है -

छाती में लागे कहां नष्ट क्वाणत बंदर आनि थिलाए है बाज ।  
बदन बैदी लाहई कहुं कहौ पूजे अनेस भले ह्व भाग ।  
रै कहां रै है नाये जहां नटराते है क्यों द्रिा षले है फाग ।  
आवौ डरौ मति मोहन जू मन फारे अकास न चण्णगरी लाज ॥<sup>2</sup>

जब उपालम्भ नहीं देती है तब मौन रहकर मान भी कर लेती है और रूठ जाती है।<sup>3</sup> जागृतावस्था की तो बात ही क्या अगर स्वप्न में भी प्रिय के मुख से किसी अन्य स्त्री का नाम सुन लेती है तब भी सिसा कर मान कर बैठती है।<sup>4</sup> यह उपालम्भ भरा काव्य इस परकीया शृंगार का ही परिणाम है। परकीया भाव भी स्वीकृत किया गया है। रीतिकालीन काव्य का नायक एक पत्नी व्रत को ही निभानेवाला सदाचारी नहीं वरन् कल-कपट से भरा हुआ धूर्त तथा अन्य अनेक स्त्रियों से भी सम्बंध रखनेवाला बताया गया है।

1- मरगजी माल उर मदन गुपाल लाल लट पटी पाग सिर सोभा सरसाये हाँ ।  
उरफे है बार पीत पट षामे डारि बैनुनीके कटि धारि रूपमार काँ बहाये हाँ ।  
कुंज कुंज भौरनि की गुंज सुनौ सपुंज भली भली भामिनी के मन ही में भाये है ।  
मन में मुदित राजि सूर के उदित आनि जेह पाणि बांधिबे काँ मेरे गेह  
आये है ।

वही - षाष्ठ तरंग, कन्द सं० 93

2- वही - त्रु त क्क सं० 224

3- आये पति अपराध करि बोलत ज्यों मूढ बेन ।  
मन बिलषौ ल्यौ मांनिनी सिसे किय एतै नैन ॥ वही, क्क सं० 212

4- लाल प्रवीन है काम कला में न्ह अबला रति रंग लह्यौ ।  
सोये पिया क्क जागै तिया सुप्नोलणिपी हकु नाम कह्यौ ॥  
सो सुनि चोकि परी ललनां वह बोल सुबानि अधोन सह्यौ ॥  
पीय के सीस तरै ही भुजा तै निकारि के रीस तैमान गह्यौ ॥

वही - क्क सं० 69

### विप्रलम्भशृंगार :

जहाँ अनुराग तो अति उत्कट है, परन्तु प्रिय समागम नहीं होता उसे विप्रलम्भ वियोग कहते हैं।<sup>1</sup> शृंगार काव्य का रचयिता शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का चित्रण करता है। एक ओर जहाँ संयोगकालीन सुखद स्थिति की अभिव्यक्ति होती है वहीं दूसरी ओर वियोग कालीन दुःखद अवस्था का भी चित्रण किया जाता रहा है। संयोग में नायक-नायिका का मिलन रहता है जिसके कारण उनमें परस्पर आकर्षण, मिलनोत्सुकता, मनोविनोद इत्यादि प्रसंग चित्रित किये जाते हैं, वियोग में नायक-नायिका बिछुड़ जाते हैं फलस्वरूप उनका एकाकीपन तनहाई, पीड़ा, आँसू, उँससँ इत्यादि विषय ही वर्णित किए जाते हैं। कुँवरकुशल के द्वारा वर्णित शृंगारिक काव्य के भी ये ही विषय रहे हैं। विप्रलम्भ शृंगार नायिका के दुःख तथा पीड़ा से भरता हुआ है। संयोग में जो नायिका हँसमुख, बुलबुली तथा उल्लसित रहती थी वियोग के कारण वह अनगल प्रलाप करती है उसे फूलों की माला भी अच्छी नहीं लगती है, कमल पुष्प सदृश जो कभी खिली हुई रहती थी वही अब कुम्हल हुई दिखती है, व्यथित ममरी की तरह घूमती रहती है, वह रिसा जाती है इसलिए सखियाँ भी उसके पास से हट जाती हैं, हाथों से तिनके तोड़ती है, और नाखूनों से पृथ्वी पर लिखती रहती है, तथा आँसुओं से आँसुओं की धारा बहती है, मन उदास रहता है, लम्बी दुःखमयी उसाँसे अर्थात् आँसुं भरती रहती है नायक के वियोग में ऐसी नायिका क्ली गह है।<sup>2</sup> जब प्रिय का वियोग हो जाता है तो प्रकृति के नियमानुसार

1- साहित्यदर्पण, पृ० 1०६

2- बकें आल बाल चाहें नहीं फलमाल चहें  
कुमिलानी आँ आँ कंन की कली है।  
ममरांनी भवकी फिरति हह हह करे  
सिसमरी देषि संग सष्ठी दरि ठली है।  
हाथान तिनका तारे नषानि लिषाति भूमि।  
द्वानि ते आंसुनि की धारे बह चली है।  
मन में उदास उंचे सांसनि भरत भारी  
तुमर बिरह कान्ह क्ली गाप लली है।  
ल. ज. सि०, अ. त. कन्द सं० २

सभी कुछ याद आने लगता है -

कालिह गड़ ही में कूल कालिंदी के केकीन कोकिल कूक करे ।  
बाढ़ ह्यि दुष्ण ठाढ़े है ग्वाल औ चित्र के काढ़े न गैया चरे ।  
आली नहीं बनमाली उहां बनधाली वियोग तै नैन भरे ।  
बेली नहीं चमेली सु फैली है कुंभ में मेलिके फूलिनिआसू भरे ॥<sup>1</sup>

जब प्रिय अच्छा लगता है तो प्रिय की प्रत्येक वस्तु भी अच्छी लगने लगती है । वियोग के समय तो यह भावना और अधिक तीव्र हो जाती है । कृष्ण मथुरा चले गये हैं कृष्ण की मुरली की तान छूष कृष्ण के साथ-साथ अभी तक स्मृति में रह गई है, इसलिए जहाँ कृष्ण मन को साथ ले गये हैं वही मुरली की धुन भी मोहित किए हुए है ।<sup>2</sup> जब प्रिय पास में नहीं है तो प्रिय के बिना एक फल भी मन को चैन नहीं मिल पाता, हर समय मन व्याकुल रहता है ।<sup>3</sup> यह मन बहुत कठिन है अर्थात् इसे संभाला नहीं जा सकता, अब तो तन की भी सुधि नहीं रह गई है, यह शरीर घुन की तरह प्रतीत होता है । घर भी सूना-सूना लगता है और हृदय में दर्द होता है ।<sup>4</sup>

1- ल. ज. सिं० इन्द्रसं० 16

2- मेरी ही मन ले गयो टुक मुरली की टेर ।  
कान्ह को त्यां बसत हो या मथुरा अंघर ॥

वही- चतुर्दश तरंग, छन्द सं० 147

3- हचिर रचत बिध रजनी अलि पिय सुरति नकरत सरद घर की ।  
सोइ नि ततल गि क सजनी कल हकु पल न परत मन में ।

वही - पंचदश तरंग, छन्द सं० 27

4- यह मोहन अति कठिन, सखी किय नांहिनि रखि पिय को ।  
सूरती न अब मोत्तन घुन घर सब सूनों दरद जियको ।

वही - चतुर्दश तरंग, छन्द सं० 245

वियोग में कष्टकारी सबसे अधिक वर्षा कृत होती है। वर्षा में चारों ओर रात भी अंधारी होती है, कामोदीपक पत्ती मोर, कोयल, पपीहा आदि भी कूकते रहते हैं, मौसम भी लुभावना रहता है, बूँदें बूँदें भी बरसती हैं, ऐसे समय प्रिय न देखे तो भी दुःख होता है<sup>1</sup> और देह भी कोंपती रहती है<sup>2</sup> जब से बाकलों की आवाज सुनाई पड़ने लगती है तभी से यह शरीर दुःख रूपी पाल तान लेता है, घहराते हुए बाकलों से डर लगने लगता है, जब प्रिय पास न हो तो समय में नहीं आता क्या करना चाहिये<sup>3</sup> बसन्त कृत भी कम दुःखदायी नहीं, बसन्त कृत में फूल खिल जाते हैं कोयल भी कूकने लगती है तो उसकी कूक हृदय में हूक के समान जाकर प्रतीत होती है, इसलिए उसे दुःख होता है कि अब तक प्रियतम क्यों न आये।<sup>4</sup> कोयल कूकती है भौरों भी मधुर गुंजार

1- केकी केका सघन सष्णी गानै संध्या मरम दुणी ।  
बूँदें तैष्णी वरणात है ज्ञाही पके सो निरणात है ।

ल. ज. सिं० कृन्द सं० 765

2- (अ) नाना रंगी नावै संपारी आली घाँसैं स्यामा अंधारी ।  
गानै मेहा ओ मोरा गये कैं ये देहा कंता नाये ॥

वही - कृन्द सं० 778

(आ) ठौरै ठौरै केकी केका भारी घोरै बोलै मेका शूनी संपाषाँ  
कंता ज्ञाही काया कैं ॥

वही - कृन्द सं० 748

3- तरही गन के जब बोल सुने, तब ते तन में दुख पाल तने ।  
घहरात घने घन में डरियै, अब कंत नहै अलिबयो करियै ॥

वही - कृन्द सं० 822

4- बनि फूल बास बसंत अजहूँ न आवत कंत ।  
किय अब कोयल कूक हिय मांफि हू कतहूक ।

वही - कृन्द सं० 775

करते रहते हैं ऐसे समय में शरीर भी कामाग्नि के ताप से पीड़ित होता है इसलिए निवेदनपूर्वक कहती है कि क्यों नहीं आ जाते -

बहु गान कोयल बाल मधु गुंज गुंजर साल ।  
तन देत काम नु ताप पिय क्यों न आवत आय ॥<sup>1</sup>

वस्तुओं का अच्छा लगना भी अपनी स्थिति पर आधारित है । यदि स्थिति संयोगकालीन है तो प्रकृति की सभी वस्तुएँ मनभावन प्रतीत होती हैं, लेकिन वियोग के समय वे ही सुखद लगने वाली वस्तुएँ दुःखदायी प्रतीत होती हैं । प्रिय पास नहीं हैं तो किसी भी वस्तु में से आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है कपूर का चूर्ण भी चुरकरी के समान लगता है, जवादि देह को जलाने लगता है, चन्दन, चन्द्रमा तथा चमेली का हार भी दुःख का कारण बन जाते हैं, जल, वायु भी अच्छे नहीं लगते, कहीं भी प्रेम नहीं पगता अर्थात् किसी के भी प्रति आकर्षण नहीं रह जाता ये सभी वस्तुएँ अब दुःखदायी हैं इन्से दूर ही रहा जाये तो अच्छा है ।<sup>2</sup> वियोग में नायिका के मन में रहेवाला प्रेम राग मानो पूरे शरीर में विषा बनकर फैल जाता है और वियोगाग्नि ज्वर की तरह फैल जाती है अर्थात् सारा शरीर ज्वर की तरह उत्पन्न हो जाता है और हृदय में विषम दाग देते हैं अर्थात् कष्ट देते हैं ।<sup>3</sup> इसलिए सखी द्वारा किया गया हर उपचार व्यर्थ ही जाता है,

1- ल. ज. सिं० छन्द सं० 776

2- चुरकरी है कपूर के चुरन जारत देह जवादि लगे ।  
चंदन चंद चमेली के हार दुषार भये निशि यों सजगे ।  
नीर समीर सखी न सुहात उसीर तै प्रेम कहूँ न पगे ।  
ए सब सीरे भये दुष सांज ह्मै इनि तै अब दूरि भौं ।  
वही - <sup>अ. न.</sup> छन्द सं० 23

3- विषा ज्यौ तन पै विस्तर्यौ माननि के मन राग ।  
पावक ज्वर ज्यौ पाह्यै देत विषम ह्यि दाग ।

ल. ज. सिं०, छन्द सं० 12

सुख में जो हार सुखकारी प्रतीत होता था अब वही हार दुःख देने वाला बन गया है इसलिए वह वियोगिनि बाला दिन रात यही बोलती है कि कपूर से मत छोरो अर्थात् कपूर से भी ठण्डक नहीं पहुँचती ।<sup>1</sup> वियोग में बाक्यों का कल भी मदन का कल समझ में आता है इसी तरह का सारा वर्णन मिलता है -

घुखा न जानि सषी ये कल मदन को है  
 बूझ्या न हौहि वान फर बरसह है ।  
 गरजि न जानि ये सपणो नारनि की  
 छोरे जोर जगनुं न जानि जोति जाम की जगह है ।  
 बगुला न पंतिये पताका सेत पट की है  
 दादुर न छोरे ये नकीब सोर गह है ।  
 बालिम विदेस बर विरहनिमारिबे को  
 बीजुरी न हौहि समसोर दुषदह है ॥<sup>2</sup>

ऐसे समय में गुलाब की सेज भी सुहाती नहीं, चंदन भी चित्त को सन्तप्त कर देता है ये गुलाब का जल भी शरीर में ताप को उत्पन्न कर देता है ।<sup>3</sup> एक अन्य स्थान पर भी वर्ष्मकालीन स्थिति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया गया है -

- 1- कहा करत उपवार अलि हरहु सुणार सुहार ।  
 बोलति दिन निशि बाल यो धोरिन तू धनसार ॥

वही - <sup>जोते</sup> कन्द सं० 11

- 2- वही - <sup>जोते</sup> कन्द सं० 83

- 3- सेज गुलाब सुहात नहिं चंदन चित संताप ।  
 अलि ये नीर गुलाब को तन उपजावत ताप ॥

वही - कन्द सं० 156

घोर करे विहुँ और घनाघन दाग्निनिता ज्यो तेत दिषाहँ ।  
 बूँद लगे अति बाँन ते पैनिये धीरज छाँडि अधीरता अहँ ।  
 पौन वहै परचंड महा तन कंपत कारी निखा दुषदाहँ ।  
 के दुषा अंत करे जमराज जु के दुषा कंत हरे सुनि भाहँ ॥ <sup>1</sup>

इसी वर्षाकालीन समय में, बाँलों का गर्जन, चमकती चंचल बिजली तथा पवन सभी पत्थर के समान लगते हैं -

बरसत जलधर गरजत गगन तडित चपल अति सुषाद पवन गति बासंता ।  
 सखि पत्थर समटि यहै अलौ आये नहि <sup>किया</sup> ~~किया~~ ॥ <sup>2</sup>

यहाँ पर पत्थर से उपमा दी गई है जो कि उनकी कठोरता तथा उनके द्वारा पहुँचाई गई चोट की ओर इंगित किया गया है ।

यह सब तो भारतीय परम्परागत वर्णन हुआ । इसके अतिरिक्त फारसी पद्धति के अनुरूप वियोग के कारण क्षीण हुई नायिका का भी उल्लेख किया है । यहाँ पर अतिशयोक्ति का सहारा लिया गया है । जब से कृष्ण द्वारका चले गये हैं, समस्त सुखों को अपने साथ ले गये हैं, सारी सुन्दरियों उनके वियोग में जल-जल गई हैं, अजिर में बैठी क है उनकी दृष्टि धरती पर ही टिकी हुई है और आँसुओं से आँसुओं की बूँद फर फर कर बहती रहती है, शरीर में विरह रूपी सुरंग लग गई है मुख का रंग भी बकल गया है और मटमैला हो गया है, वियोग में दुबली हो गई है

1- ल. ज. सिं० <sup>प्र. त.</sup> कृन्द सं० 88

2- वही - चतुर्विंश तरंग, कृन्द सं० 253

और कुबड़ी भी हो गई है अर्थात् बशबितहीन हो गई है, तथा कंकन के स्थान पर अब बांह में उंगली की आंठी ही आजाती है -

द्वारका पधारै हरि सुष लै गये हरि जरि जरिपरी परि है सब सुंदरी ॥  
 अनिर मैं बैठी पै धरनि नजरि नैननि तै फरि फरि फरि ये आसु बूंदरी ॥  
 सब तन दुर्ग मांफ बिह सुरंग लगी मुष मैं कुरंग लषि मैं लोमचूंदरी ॥  
 दूबरी वियोग तै म्ह है गोपी कूबरी सुकंकन की ठौर करी आंगुरी की मूंदरी ॥<sup>1</sup>

एक अन्य चित्र भी उपस्थित है देखिए -

द्वैसा और देह की है नजरि सनेह की है सुधि नहिं गेह की है गरि गयो गात है ।  
 धरतन नैकुंधीर असी म्ह है अधीर नैन निबहत नीर ज्यों बहीर जात है ।  
 सुषद सुजान तिथ हित मांफ राखौ हिय जुगति बिचारा जीय असो अबदात है ।  
 गहौ सांच मेरी गात चलिकै नु देणौ नाथ बाके हाथ हाथ की आंठी मैं समात है।<sup>2</sup>

इसी प्रकार के चित्रण अन्य स्थानों पर भी देखे जा सकते हैं और जहाँ पर नायिका की क्षीणावस्था को व्योक्त करने के लिए कंकण और मुंबरी का प्रयोग किया गया है।<sup>3</sup>

इस तरह हम देखते हैं कि कुँवरकुशल ने अंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पदों का सुंदर चित्रण किया है। संयोग के चित्र जहाँ एक ओर सरस, सुन्दर, आनन्ददायक तथा बुलबुलाहटपूर्ण है तो वियोग के चित्र उतने ही मार्मिक, दुःखदायी तथा प्रभावशाली

1- ल. न. सिं० <sup>प्र. न.</sup> छन्द सं० 162

2- वही - छन्द सं० 163

3- वही - छन्द सं० 238, 39

बन पड़े हैं। संयोगावस्था में दोनों की सुखद स्थिति का सुंदर अंकन किया गया है तो वियोगावस्था में किया गया वर्णन भी वियोग की कसक, पीड़ा, कष्ट, तथा छटपटाहट से भरा हुआ है। इसी कारण कुल मिलाकर उनका श्रृंगारिक काव्य प्रभावान्विति के गुण से सम्पन्न है।

### प्रशस्ति काव्य :

रीतिकाल में प्रशस्ति काव्य भी अत्यधिक मात्रा में रचा गया। रीतिकालीन काव्य राज्य छत्र की क्रीड़ा में जन्मा, पला, तथा विकसित हुआ। कवि और कलाकार राजाओं के आश्रय के इच्छुक थे, और इसके लिए भरसक चेष्टा भी करते थे। जब राज्य छत्र मिला तो यह अत्यन्त आवश्यक हो गया कि आश्रित कवि अपने काव्य का नायक अपने आश्रयदाता को बनाये। इसलिए ही जहाँ एक ओर आश्रयदाता एक रसिक के रूप में चित्रित हो रहे थे, दूसरी ओर उनकी वीरता का भी बखान हो रहा था, बल्कि कविगण उनकी प्रशस्ति में आकाश-पाताल एक करने में अपने परम कर्तव्य का पालन समझते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति करने में कोई कसर बाकी न रखी। अपने आश्रयदाता की राजसभा, उनकी सम्पत्ति, उनकी यशस्विता, उनकी दान-प्रवृत्ति का चित्रण खूब सुरुकर हुआ है। कुँवरकुशल राजा लखपति के आश्रित कवि रहे हैं, उनके समक्ष भी अपने पूर्ववर्ती और समकालीन कवियों का दृष्टिकोण रहा। इसका दूसरा कारण यह भी था कि राजदरबार में आदर सम्मान प्राप्त करने के लिए तथा राजा को खुश रखना अत्यन्त आवश्यक था। राजा द्वारा सम्मानित होने पर ही दूसरों से सम्मान प्राप्त की आशा की जा सकती थी। दूसरे धन-प्राप्ति का भी यह प्रशस्ति-काव्य एक स्रोत रहा है। राजा की बढ़ा-बढ़ाकर की गई प्रशंसा से उन्हें अर्थ-लाभ हो रहा था। क्योंकि यह तो सर्वाविदित ही है कि राजा छत्र हो अथवा कोई सामान्य व्यक्ति, सभी अपनी प्रशंसा के इच्छुक होते हैं।

प्रशंसा सुनने का लोभ कहे भी संवरण नहीं कर सकता। अतः राजा की प्रशंसा करके सम्मान, अर्थ, यश आदि की प्राप्ति सख्त ही हो जाती थी। ये सभी कारण प्रशस्ति काव्य के अस्तित्व के प्रेरक रहे हैं। कुँवरकुशल के समक्षा भी यही परिस्थितियाँ अथवा कारण रहे हैं जिसके कारण उन्हें इस प्रकार के प्रशस्ति-काव्य की सर्जना करनी पड़ी। यों भी कुँवरकुशल ने इस ग्रंथ का नामकरण भी इसी आधार पर किया है। अन्यो के समक्षा भले ही यह उद्देश्य गौण रहा हो परन्तु कुँवरकुशल राजा के प्रशस्ति-वर्णन को प्रमुख स्थान प्रदान करते हैं। जैसा कि उनका अन्तर्कथन मिलता है<sup>1</sup> उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि यह उद्देश्य पहला उद्देश्य था। इस समस्त ग्रंथ में लखपति राजा के यश की बात मिलती है। मानों यश रूपी सिन्धु गर्जना करता हुआ प्रवाहित हो रहा हो। यश-समुद्र की उत्तुंग लहरें सर्वत्र बहती रही हैं।

अब हम यह देखें कि कुँवरकुशल ने इस वर्णन में कितनी सफलता प्राप्त की है -

लखपति जससिन्धु की प्रथम तरंग में कुँवरकुशल ने राजसभा का अनुपम चित्रण किया है। राजाओं के भी राजा लखपति की राजसभा में बड़े-बड़े अमीर उमराव उपस्थित हैं, योद्धा, वीर, कामदार, फौजदार सभी हैं। ऐसी

---

1- कुँवरकुशल तिन में करत बहु घटु कौ जस बास ॥

सभा कहीं अन्यत्र न तो सुनी और न देखी है ।<sup>1</sup> उनकी सेना की गिनती कौन कर सकता है । आयना महल के प्रत्येक दर्पण में प्रत्येक की गतिविधि प्रतिबिम्बित हो रही है । जिसमें प्रताप है तथा अनेक सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित है ऐसे महाराजा लखपति सदैव विराजमान रहते हैं ।<sup>2</sup> उनके दरबार के ज्ञानियों के की गिनती कौन कर सकता है । क्या ब्रह्म द्वारा अवतरित ज्ञानियों की गति को कोई जान सकता है ?<sup>3</sup> कुँवरकुशल, ने जो प्रथम तरंग में बंश-वर्णन किया है वह भी बहुत कुछ उनकी यशोगाथा का अंश बन गया है । यहाँ पर राजा की दानप्रियता, राजा की आश्रय देने की प्रवृत्ति, संगीत-प्रेम इत्यादि का वर्णन विस्तृत रूप में किया गया है । चन्द्रवंशी राजा लखपति को कौन दान और शूरता के बारे में समझ सकता है अर्थात् वे स्वयं ही दान और शूरता के पर्याय हैं -

सोमवंस को है सदा सचो सहज सुभाय ।

सिखावै कोलणासिंध को दान प्रताप दिषाय ॥<sup>4</sup>

राजा लखपति किसी का दुख न तो देख सकते हैं और नहीं सुन सकते हैं सबको धीरेज बँधाने वाले हैं और अपने नाम को धैर्य रखनेवाला साथक करनेवाले हैं, ईश्वर कृपा हो तो शीघ्र ही सबको मनवांछित वस्तु देनेवाले हैं, याचक को किसी

-----  
1- एक और देखियत बड़े बड़े उमराठ  
एक और है अमीर बड़े परमान के ।  
लाषानि के पछापावै अरि को उडावै जंग  
अवल पहार से अपार अभिमान के ॥  
कामदार फौजदार बक्सी अनेक ओर  
पंडित बिबेकी बैद जे जोइसी सुजांन के ।  
राजनि के राजा महाराजा लखपतिजके ।  
सभा जैसी दिषि तैसी कौहु नाहि आन के ॥

- वही-<sup>पु.त.</sup> कन्द सं० 4  
2- ल. ज. सि० कन्द सं० 5  
3- वही- कन्द सं० 6  
4- वही-<sup>पु.त.</sup> कन्द सं० 4

प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वे शीघ्र ही उसके दुःख को भूल कर देनेवाले हैं -

और को कुछ न दोषा सकौ सुनि कांननि कौ सक टोरि तै आऊँ ॥  
 घोर विठाऊँ सबे जग कौ लषाघोर जु मेरो मैं नाऊँ घराऊँ ॥  
 जो जगदीस करै तो वेगिहिं लै मन्ह छित माल विवाँऊँ ॥  
 याचक तू जिनि सोच करै इनि आँसर तेरो मँदुःख बहाऊँ ॥<sup>1</sup>

द्वेषल का पुत्र राजा लखपति दानी है अभिमानि है, प्रताप का पुंज ही है, यह राजा यदुवंश में अवतार का अंश्वरूप ही है, उनकी दी हुई बख्शीश को सुनकर श्वीस भी लज्जित हो जाता है और सोने का पहाड़ कौंपता रहता है, देवलोक, नागलोक सर्वत्र लखपति का यश देदीप्यमान हो रहा है।<sup>2</sup> उनके दान की गाथा सुनकर कुबेर भी आराम से नहीं रह सकता, रत्नाकर भी कौंपता रहता है, और न ही सुमेरु पर्वत सो पाता है -

द्वेषल सुत कौ दान सुनि कल पावै न कुबेर ॥  
 कांपत रतनाकर कुंजर सोवत नाहिं सुमेर ॥<sup>3</sup>

1- ल. ज. सिं०, <sup>ज. त.</sup> छन्द सं० 43

2- समा बैठि येक रूपलाषा चढ़े शत्रुनि पै राजनि के हिये मैं भरोसो जाके सार को  
 देशल कौ दानी अभिमानि है प्रताप पुंज कुंजरेस यादौवंश अंस अवतार कौ ॥  
 जागी बख्शीस सुनि लाजत श्वीस बीस थर थर कपै गात सोने के पहार कौ ॥  
 देव लोक नाश ओकपुहनी प्रकास णासदीप दीयै दीपै जस लाषानु कुमार कौ ॥

3- ल. ज. सिं०, क. त. सं० 66 वही - छन्द सं० 66

3- वही - छन्द सं० 89

एक अन्य स्थान पर भी लखपति का यशोगान अनुप्रास अलंकार के द्वारा सुन्दर चित्रण हुआ है -

दृष्टिपाकर अस्स कवि राजा क्वी कतिवारी  
 क्वत्रपति का सुख क्वहं क्वहयै ॥  
 गुरु गारा गुरुताहं गज बंधी गुन गेह गाजिये  
 गुमान गज कीर्ति का कमहयै ॥  
 जती कुंअरेस कीयै जाहिर असीस जादो  
 जंग जुरे जादो राज अस्स जीत पाहपै ॥  
 परम पुनीत पत्तिहाह तप पश्चिम के  
 पुहमी पै पुन पूरै लाषा ताहि गाहयै ॥<sup>1</sup>

इन आश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाता की वीरता, दान, प्रताप इत्यादि के साथ-साथ उनकी समृद्धि का भी वर्णन किया है। इनके आश्रयदाता हर दृष्टिकोण से उच्च चित्रित हुए हैं। कुँवरकुशल ने भी राजा की समृद्धि का खूब वर्णन किया है। इसी ग्रंथ की द्वितीय तरंग 'भुजनगर का वर्णन' में उनकी इस समृद्धि का सुन्दर चित्रण हुआ है। राजा की राजधानी भुजनगर भी एक समृद्ध नगर है जहाँ पर हर प्रकार की वस्तुएँ सुलभ हैं। इसके बाजार भी विस्तृत हैं जिनमें क्रय-विक्रय होता रहता है। राजा लखपति का फीलखाना हाथियों से सुशोभित होता है<sup>2</sup>, राजा का छुल्लखण घुल्लखाल भी अपार घोड़ों से भरा हुआ है ऐसा प्रतापी राजा पृथ्वी पर अवतार स्वरूप है -

1- ल. ज. सिं०, द. त. क्वन्द सं० 15

2- फील फीलखाने फबे लषापति केलषिलाष ।

ल. ज. सिं०, द. त. क्वन्द सं० 31

राउ नंदलषधीर के ह्य ह्य सार अपार ॥  
जोरार जादोपती अनी पे अवतार ॥<sup>1</sup>

इतना ही नहीं राजा लखपति के आगे इन्द्र उच्येभवा, कल्पवृक्षा, कर्ण, कुबेर भी नाप्य ही भासित होते हैं -

इंद कहा कीजे जहां खल नरिंद सुत सरावत कहा याके हाथी हैं उतंग के ॥  
उच्येभवा कहा कीजे याकी पाय गाभे सदा कुंअरेस बाजी लाषे जय दह जंग के ॥  
कल्पवृक्षा कहा साजे महाराउ हाथ आगे लखन अधिक लसे जाके सुभ आ के ॥  
करत कुबेर कहा राजा लषधीर आगे कखनी कायम हो जा लो जल गंग के ॥<sup>2</sup>

यह स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक आश्रित व्यक्ति के मन में यह भावना होती है कि उसका आश्रयदाता सबके फलता फूलता रहे। वह सुखी तथा समृद्ध रहे, ताकि वह अपने आश्रित रहने वाले व्यक्ति को कुछ न कुछ देता रहे। दूसरे अपने आश्रयदाता के प्रति उपकार स्वरूप अथवा कृतज्ञता स्वरूप उसके मन में आदरमिश्रित पूज्य पूज्य भाव भी विद्यमान रहता है, इसलिए सबके उसके लिए मंगल कामना मनाता रहता है। तीसरे आश्रयदाता उसे प्रिय भी लगता है इसी कारण भी उसका हित चाहता है। इन्हीं सब कारणों से आश्रित कवि भी इसी प्रकार का वर्णन करते हैं। ईश्वर से अपने राजा के राज्य की अकलता की प्रार्थना करते हैं, उनके राज्य में सुख, समृद्धि वैभव का सागर छुड़लाता रहे। कुंवरकुशल कृत 'लखपतिजससिन्धु' में भी यही भावना विद्यमान है इसलिए प्रत्येक देवी-देवता से उसकी कुशल-कामना तथा अविचल राज्य की कामना करते हैं। उदाहरणतः -

1- ल. ज. सिं० ५, इन्द्र सं० 32

2- वही सं०, इन्द्र सं० 48

ससि कुल सुष्पाद<sup>०</sup>सुष्पाद<sup>०</sup> लषापति सूरों जह तह दिसि विदिसि सुजस भर जग मै ।  
 पनघट धरपति पूरो परगट भुज तषत थिर पेणों ॥<sup>1</sup>  
 ससि कुल सुष्पाद सदाह<sup>०</sup> धरपति भुज तषत लषधीर ।  
 महर करीय महमाह<sup>०</sup> केशल नंदा सुजस दीपे ॥<sup>2</sup>  
 सिष्पाकारं तेज बिथार रषत गर सुअहि हार ।  
 सो देह सुं सुंपति अ लखपति को निति घट सदा सहहसारं ॥<sup>3</sup>  
 नौलौ यह चंदाधर सूरिज, हरि हर ब्रह्मा बनाउ ।  
 तो लो लषापति अल तषत पे, राजकरहु सुतराउ ॥<sup>4</sup>  
 सरय सरिध जब लग जलधि मही सुमेह साज ।  
 तब लग लषापति को सफल सुथिर रहो सुषाराज ॥<sup>5</sup>

यज्ञ का रंग श्वेत माना गया है । राजा लखपति का यज्ञ इतना तो प्रभावशाली है कि उसके समदा संसार की समस्त श्वेत वस्तुएँ उसके पीछे चलनेवाली प्रतीत होती हैं -

सुरधर, सुरगज सुर सरित, हिम गिर मुक्त निहारि ।  
 रवि ससि लषापति कुंवर कहि, सुभ तुव जसअनुसारि ॥<sup>6</sup>

- 
- 1- ल. ज. सिं० <sup>पंचदश त.</sup> अ. कन्द सं० 524  
 2- वही - कन्द सं० 513  
 3- वही - चतुर्विंश तरंग, कन्द सं० 185  
 4- वही - कन्द सं० 311  
 5- वही - कन्द सं० 918  
 6- वही - चतुर्विंश तरंग, कन्द सं० 164

कुँवरकुशल ने राजा की समृद्धि में विशेष रूप से हाथियों का बखान किया है । ऐसा प्रतीत है मानो राजा के जानवरों में हाथियों की संख्या ज्यादा रही होगी अथवा राजा को हाथी अधिक प्रिय रहे होंगे । इसलिए बार-बार हाथियों का वर्णन आया है ।

कुँवरकुशल ने राजा की राजसभ, उनके गुणों के साथ-साथ कच्छ देश का भी वर्णन किया है । कच्छ देश के महल की शोभा, बनावट तथा सुंदरता भी देखते ही बनती है -

कंचन की भूमि में दिवाल देणो कुंदन की,  
 द्वार द्वार दीपति है विद्रुम सुदेव के ॥  
 कुँवर पिराजा के किवार छत्र मानिक के,  
 छात छाजे पन्ना पुष्पराज है सुवेस के ॥  
 जाली औ करोणा हीरा जननग जवाहिर ते  
 मोती की किनारी तास परका उष उजेसके ॥  
 मन्दर से उन्नत पुरंदर ते सुंदर ये  
 मंदिर है देणिये कच्छेस नू नरेस के ॥<sup>1</sup>

कुँवर कुशल ने राजा की राजसभ, उनके गुणों के साथ-साथ कच्छ देश का भी वर्णन किया है । राजा जिस कच्छ देश में रहते हैं वह सभी दृष्टिकोणों को स्वर्ग से भी विशेष सुखी है -

गाम घाम घाम ठाम ठाम दाम भरेरु नामकाम के चित्राम उत्तमणास है ॥  
 लाल परवाल मोती माल हीर जाल हेमथाल औमसाल माल अधिक उजास है ॥  
 तरसेवाअर मह और है हरित नैबी हाथी ह्यहसमनि के ह्यि में उलास है ॥  
 महाराठ लषाधीर इंद सम चंदरसी स्वर्ग है विशेष कच्छेस सुषवास है ॥<sup>2</sup>

1- ल. ज. सिं० त्र. त. छन्द सं० 118

2- वही - छन्द सं० 119

इसी मौक़े पर प्रशस्ति के अन्तर्गत वीरता पूर्ण वर्णन भी सम्मिलित किया जा सकता है। इसका वर्णन 'लखपतिजससिन्धु' में मिलता है। यद्यपि यह इतिहास-सम्मत है कि अपने राज्यकाल में महाराज लखपति जी ने किसी के साथ युद्ध नहीं किया था तथापि उनकी वीरता तथा पराक्रमता का भरपूर वर्णन किया गया है। परन्तु अपनी कुमारवस्था में अश्वशुभ्र मुलों का वीरतापूर्वक सामना किया था। कुँवरकुशल ने उसे सुना होगा और तब उसी का वर्णन किया गया है। राजा लखपति का तेज, उनका प्रताप सर्वत्र प्रसरित हो रहा है। राजा लखपति जब मुलों पर आक्रमण करते हैं तब स्क उनकी वीरता देखते ही बनती है -

आसापुरा का हुकम भये, हौ चढ्यो लषाधीर मुल्ल पै छूँ ॥  
 धाक मचाउं घरा मै धमक तै पवत घोरे के पहनि कूँ ॥  
 तेका बजाउं उडाउं अरीनि कौ बांधि के पोटनिधावनी मै ए उं हं ॥  
 षाननि मुंडनिषांड करौ अ लोहू की धार नदी नद पूँ ॥<sup>१</sup>

इतना ही नहीं लखपति के मात्र विचार करते ही उनके विपक्षी भयभीत होकर भागने लगते हैं।<sup>२</sup> और रणभूमि में राजा अपने विपक्षी के झुण्ड को गेंद की तरह उछाल देते हैं -

वीर महा बडी धीरज तै लषाधीर विपक्षि तै जंग अटक्कत ॥  
 डैमुज दंडनि तै अरि झुण्ड के गेंद ज्याँ मुंडनि भूमि पट्टक्कत ॥<sup>३</sup>

1- ल. ज. सि०<sup>ख. त.</sup> अ. कन्द सं० 32

2- देशल नंद लषापतिज बर तै ए बिवार धरयो मन मै ॥  
 मारि विपक्षि कौ लूटि लषा लक्षि कौ अँ कह्यो अपनेगन मै ॥  
 सु सुनि के अरि भागि चले भयभीत भये अपने तन मै ॥

सूरनि सिंह लषो तिहिं ठाँ सुधि भूँ फिरै भय तै बन मै ॥

वही - कन्द सं० 49

3- वही - कन्द सं० 51

एक अन्य स्थान पर भी कुँवरकुशल ने अप्रस्तुत प्रशंसा के माध्यम से राजा लखपति की वीरता का चित्रण किया है। काल रूपी करवाल अपनी खाँ से रक्त रूपी पानी को प्रवाहित कर रहा है। घटा अर्थात् राजा की फौज प्रबल वेग से उमड़ती चली आ रही है। बल से युक्त गान की आवाज बड़ी ही डरावनी और त्रासयुक्त है। आँख तो खोली ही नहीं जा सकती इतनी तीव्रता से फराफरी (तेज वषाँ) हो रही है, आसमान भी घुँक्का सा हो गया है। लषाधीर के प्रभाव रूपी जल की धारा एक क्षण में ही अपने शत्रुओं की प्रतापाग्नि को बुका देती है -

काल करवाह महा अम्बु बाह कौ प्रकाशि  
 उमड़ी घटा की घटा वाप कौ चढायो है ।  
 बरबंड बीर हंक गान की आवाज साजि  
 उग्र अनिहद असौ वास दरसायो है ॥  
 धरी एकु आँषिन उधारै मवीफराफरी  
 घुघुरित आसमान भान तम ढायो है ।  
 देव लषाधीर जहाँ धारा जल के प्रवाह  
 अरि कौ प्रताप वहिन पल में बुकायो है ॥<sup>1</sup>

राजा लखपति के प्रताप से सभी स्वप्न पृथ्वी के <sup>सभीराज</sup> धर धर काँपते हैं, पृथ्वी भी कम्पित होती है, पर्वत तथा ज्वला भी काँपते हैं, दिग्गज सटपटाते हैं शेषनाग भी अपने बिल में जाकर पँठ जाता है, देशल के पुत्र लखपति की दृढ़ भुजायें तथा नेत्र जब देखते हैं तब शत्रु गणा भी समुद्र पार रहते हुए भी हृद्य से म्यभीत होते

1- ल. ज. सिं० षाष्ठ तरंग, कन्द सं० 77

रहते हैं ।<sup>1</sup> इतना ही होता तो भी गनीमत थी लेकिन पत्नी के साथ रमण करते हुए भी जब कभी लखपति के चित्र मात्र पर दृष्टि जाती है तो उसके हाथ काँपने लगते हैं -

भामिनि के संगि भुवन में शत्रु रमत सुष्ण साथ ।  
लषापति रूप सुचित्र लषि थर थर धूजत हाथ ॥<sup>2</sup>

राजा लखपति के युद्ध का डंका सुनते ही शत्रु की पत्नियाँ अपने पति से मिलने और भागने के लिए अधीर हो उठती हैं -

सुनि धौ लषासिंध को फ़ाटी अरिपर पीर ।  
भरतार मिलिबै भागिबै यौ युवतीनि अधीर ॥<sup>3</sup>

एक स्थान पर कवि कुँवरकुशल ने राजा लखपति और उसकी शक्ति को रुद्र और इसकी शक्ति(पार्वती) के साथ उपमा देते हुए कहे हैं -

जहाँ वीर गन है जबर सकति सुहावै संग ॥  
असुर पधारे आज सौ रुद्रलषा रन रंग ॥<sup>4</sup>

- 
- 1- सब लषालम ल साहि भूप थर थर थर भुव कै ।  
मही कंम डिडि डि मेह कुजत सुरपति सुरधुव के ।  
दिग्गज स्रष्ट देषि प्रबल पैन्निग बिल पैठत ।  
पौत्री गंग पताल बिलिषि कूरम रद अठत ।  
देशल सुपुत्र लषि वीर दूढ वृहिन भुज दूढ लषात नव ।  
कवि कअर कहत अरि गन कलधि उत्तसुदधि के पार तब ॥  
ल. ज. सिं. प. नं. १०
- 2- वही - कन्द सं० 12
- 3- वही - कन्द सं० 13
- 4- ल. ज. सिं. <sup>द. नं.</sup> कन्द सं० 7

राजा लक्ष्मण की तलवार मात्र खिलवाड़ ही में बाल्लिला करती हुई शत्रुओं को हानि पहुँचाती है, सुन्दरियों के आमूषण तोड़ गिराती है, खिलौनों के समान गढ़ को गिरा देती है। राजा लक्ष्मण अपने अंग के बल पर कष्टों का हरण कर लेते हैं। इस पृथ्वी पर राजा लक्ष्मण उसी प्रकार हैं जिस प्रकार सूर्य उदित होकर पर्वतों को तप्त करता है।<sup>1</sup> राजा का प्रताप सर्वत्र फैला हुआ है, शत्रुओं की तरह दौड़ते रहते हैं। जो नदियाँ जलहीन थीं वे शत्रुओं की नारियों के आँसुओं से भर गईं -

प्रताप लक्ष्मण को परसे, कल दौड़ते शत्रु करीदर से।  
जलहीन भई सरिता सिगरी, अरि की ललना आँसुवलि मरी ॥<sup>2</sup>

राजा लक्ष्मण की वीरता से केवल शत्रु बल ही प्रभावित नहीं होता वरन् सुर, नर, विषाधर तथा सूर्य भी प्रभावित हो जाते हैं -

जब लक्ष्मण कटक चढते तब,  
सुमट बिकट थट, सुधट लये।  
गज मद उग रजल, घु-घु घु-घु गलल,  
नद भर जल थल, जलद लये।  
धम धम धम धम धर, धुनुत धसकि वहवि,  
सुर नर विषा धर, फनलि छये।  
ह्य पुर नर पय लणि, रज अडि विवमग,  
दिनमनि रथ पथ लुक्ति भये<sup>3</sup>।

1- ल. ज. सिं० चतुर्दश त. कन्द सं० 161

2- वही - कन्द सं० 268

3- वही - कन्द सं० 296

इस तरह हम देखते हैं कि लखपति जससिन्धु में महाराज लखपति जी की दान-प्रवृत्ति, उनकी वीरता, उनका पराक्रम वर्णित हुआ है। इसके अतिरिक्त उनकी सम्मन्नता के अंतर्गत कच्छ देश की समृद्धि तथा महाराज लखपति जी की सभा का वर्णन भी किया गया है। अतः एक ओर जहाँ महाराज लखपति जी की कायिक विशेषताओं का उद्घाटन किया गया है तो दूसरी ओर उनके मानसिक व चारित्रिक गुणों का भी उल्लेख किया है।

### भक्ति और नीति कथन :

“श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूजा भाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य-राम की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कर्तृ रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिये।<sup>1</sup> विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भक्तों को दो श्रेणियों में विभक्त करते हुए कहा है - एक वे जो संसार के जंजाल से अलग हो वैराग्य धारण कर भावान् की शरण जाने का उपदेश देते हैं और दूसरे वे जो उक्ति के स्वारस्य के लिए समय-समय पर भक्ति के उद्गार प्रकट करते हैं। पहले रचयिता भक्त या विरागी है और दूसरे कवि या संसारी।<sup>2</sup> इस दृष्टि से कुँवरकुशल कवि या संसारी की श्रेणी में आते हैं। इन्होंने उक्ति के स्वारस्य के लिए समय-समय पर भक्ति के उद्गार प्रकट किए हैं। परन्तु साथ ही वैराग्यपूर्ण उक्तियाँ भी हैं। इस सम्बंध में हम कुछ कहना चाहेंगे। यों कुँवरकुशल जैन यति हैं। अतः इन्हें पूर्ण रूप से विरागी होना चाहिये परन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता। उ इनकी श्रृंगारयुक्त रचनायें विपुल मात्रा में मिलती हैं।

1- चिंतामणि-प्रथम भाग- पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३२

2- बिहारी- विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 129

यह उस समय का युगीन प्रभाव समझा जा सकता है। रीतिकालीन काव्य श्रृंगारी काव्य है। इस समय में रचा गया भक्ति काव्य श्रृंगार की प्रतिक्रिया-स्वरूप ही माना जा सकता है। प्रतिदिन एक सा ही भोजन करते रहने से किसी अन्य स्वाद की लोलुपता नाश हो जाती है। स्वाद-परिवर्तन के लिए भले ही फीका हो तब भी ग्राह्य ही होता है। प्रतिदिन श्रृंगारपरक रचना करते-करते अपनी उजब को मिटाने के लिए भक्ति पूर्ण काव्य की रचना की जाती होगी। दूसरे, यह मानवीय प्रकृति है कि इस संसार के समस्त वैभवों का सुख भोगते हुए भी जाने अनजाने हमारी जिन्हा भक्ति पूर्ण कथन भी निःसृत करती रहती है, कभी दूसरे का दुःख देखकर, उसकी व्यनीय दशा को देखकर, अथवा अपने आप को उस व्यनीय स्थिति से बचाने के लिए भी ईश्वर का नाम लेता है। परन्तु इस कथन को हम भक्ति काव्य नहीं कह सकते हैं। भक्ति के लिए किन्हीं गुणों का अर्थात् पुलक प्रेम, सुख आत्मदीनता, आत्मसमर्पण, विश्वास, श्रद्धा इत्यादि होना आवश्यक है। इन्हीं के समावेश होने पर ही अमुक काव्य भक्ति काव्य की श्रेणी प्राप्त कर सकता है। स्वयं कुँवरकुशल ने एक स्थान पर बताया है कि ईश्वर (शिव) के गुण गाने पर भक्तों की कौसी दशा हो जाती है -

तन पुलकित दृग फलक अति सुख उमंग सरसात ।

उर भातन के होत यौ गुन सुभशिव के गात ॥<sup>1</sup>

अब हम देखें कि कुँवरकुशल का भक्ति काव्य किस प्रकार का है -

कुँवरकुशल ने 'लखपति नससिन्धु' में अनेक देवी-देवताओं के प्रति भक्तिपूर्ण उक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। इन्होंने, कृष्ण, गणेश, शंकर, सूर्य और महामाई (आसापुरा जो कि कच्छ देश की उपास्य देवी हैं) इत्यादि के प्रति भक्ति भाव की अभिव्यक्ति की है।

कुँवरकुशल तपागच्छी जैन थे । अपने जैन गुरुओं (लखपति जससिन्धु के अंतर्गत तृतीय तरंग में कविर्विश्वर्षात्) की परम्परा के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर अपने धर्म से सम्बंधित किसी भी सिद्धांत अथवा नियम के सम्बंध में कोई चर्चा नहीं की है । न ही कहीं पर महावीर के सम्बंध में कुछ कहा है । मात्र सर्वत्र हिन्दू देवी-देवताओं का ही उल्लेख हुआ है । अतः यह कहा जा सकता है कि अपने आश्रयदाता के उपास्य देवी-देवताओं को ही अपना वर्ण्य-विषय बनाया है । राजा की इच्छा ही सर्वोपरि मानी गई होगी । दूसरे कच्छी जनता भी इन्हीं देवी-देवताओं की आराधना करती थी । अतः प्रान्तीय वातावरण का प्रबल प्रभाव ही हुआ है । कुछ भी हो इनकी रचनाओं को देखने से यही विदित होता है कि ये ही ~~हिन्दू~~ हिन्दू देवी-देवता ही इनके उपास्य रहे हों ।

ईश्वर की भक्ति का मानव में उत्तरोत्तर विकास होता जाता है । पहले मनुष्य ईश्वर के नाम का स्मरण करता है, उसके गुणों का बखान करता है, उसके दर्शनों की अभिलाषा रखता है । इस प्रकार क्रमशः उत्तरोत्तर विकास और ईश्वर के साथ अभिन्न होता जाता है । मनुष्य इस संसार में रहता है तो जगत के जंजालों में फँसकर दुःखी होता है, ऐसे ईश्वर जिनके दर्शन शुभ हैं उनका जाप करना चाहिये -

जाप जप तजे जिय जगत फसतबतते दुष्ण फेरि ।  
सुभ दरसन जिनि को सदाहरि से हरि को हेरि ॥<sup>1</sup>

ईश्वर नाम का श्रवण करने से भी ईश्वर के प्रति प्रेम का भाव उदित होता है ऐसा कुँवरकुशल का विचार है -

कान सुने सुम कान्ह कथा सुकथा सुनिबै भ्रम दूर उढावै ॥  
 सो भ्रम दूर उढै मन तैं तब तैं मन सुंदर स्वच्छता पावै ॥  
 कु सुंदर सुखताह सबै कुंअरेस वहै अनुभो उपजावै ॥  
 ते अनु भो रस सांत करै रस सांत सो साहिब ही को मिलावै ॥<sup>1</sup>

ईश्वर का स्मरण करने से ही ताले (भाग्य के) खुल जाते हैं।<sup>2</sup> भक्त के मन में यह पक्का विश्वास रहता है कि ईश्वर की शरण ही मेरे लिए हर प्रकार से सुखकारी है क्योंकि वह सभी से अपने भक्त की रक्षा करता है।<sup>3</sup> ईश्वरीय नाम भी सभी दुखों का नाश करने वाला तथा सुख प्रदान करनेवाला है।<sup>4</sup> देवी आसापुरा भी दुष्टों को मारनेवाली है, कष्टों को समाप्त करने वाली है।<sup>5</sup> भक्त अपने सर्वस्व तन मन में उसी को रचा पचा लेता है जो उसकी आज्ञा को पूर्ण करता है, वह सत्य स्वरूप होता है उसका नाम भी सत्य ही होता है। ऐसा ही भाव कुंवरकुशल ने आसापुरा देवी के प्रति अभिव्यक्त किया है -

मेरे मन तन तू ही आसहि पूरत आसपुरा जू ।  
 अरु देवी यौ ही सांचौ तो नाम सोहै जू ॥<sup>6</sup>

1- वही - <sup>प्र. त.</sup> कृन्द सं० 125

2- यह रूप आला भजें संभु नाके फुलै ताला ।

वही - कृन्द सं० 873

3- काली नाथ्यो संकर गहा मरनो कंसा असुर महा ।

जाकी माया जन बरनौ, सांचो मेरे वह सरनौ ॥ वही, कृन्द सं० 764

4- सदा शिबनाम धरे उरधाम, दणौ दुषा दुंद करै सुषाकंद ।

ल. ज. सिं० कृन्द सं० 734

5- मारै दुष्टे माहामाह है, काटे कष्टे हष्टे अह है ॥

राजें भूपै भू की छै रानी बोले ब्रह्मा ऐसी बानी । वही, कृन्द सं० 779

6- वही - पंचकस लरंग, कृन्द सं० 482

यह संसार माया से निर्मित है इसलिए कुँवरकुशल कहते हैं कि विषयों के प्रति आसक्ति न रख कर ईश्वर के चरणों में चित लगाना चाहिये ।<sup>1</sup> इस संसार से तारने वाले ईश्वर को ज्ञानी नेत्रों से ही देखा जा सकता है और स्थिर रहकर ध्यान करके हृदय में धारणा करना चाहिये ।<sup>2</sup> जिसे शंकर भी मानते हैं ऐसी शिवा का सदैव ध्यान धरना चाहिये जिससे इस शरीर की मैल तो नष्ट हो जाती है और सरस रुचि श्रुत्यन्त होती है अर्थात् मन में सुंदर भावों का उदय होता है -

शिवा सदाहं सेदुयै संकर मानी सोय ।  
मैल गमावै ओं को सकल सरस रुचि होय ॥<sup>3</sup>

ईश्वर द्वारा निर्मित यह संसार बहुत विशाल है जिसका वर्णन ब्रह्मा, वेद, वाल्मीकि, शारदा, नारद सभी करते में असमर्थ रहे हैं तो कवि किस प्रकार मंदमति होने पर कीर्ति का बखान कर सकता है -

ब्रह्मा वेद वेद करि गाये हारि भेद धरि वेद ब्यास गाये है पुराननि  
प्रसंग में ।  
बालमीक रामायन सारद और नारद जु सुरनि के हसै गुन गाये सुर  
संग में ॥

- 
- 1- जगत सुमाया जानिये माया यह ओ ही मानि ।  
मान विषय में होंहि मति चित प्रभु चरनि ठानि ॥  
वही - <sup>पं. त.</sup> कन्द सं० 23
- 2- भवतारक भवनाम भ्रंति नयन सुग्यान निहारि ।  
सुथिर ध्यान लक्ष में सरस उर में उरग बिवारि ॥  
वही - <sup>द. त.</sup> कन्द सं० 49
- 3- ल. ज. सिं० त्र. त. कन्द सं० 72

संसजु सहष्ण रसना ह्यार उतै गाये है सुगुन गन परयो नही संग मै ।  
मंदमति मेरी कहुँ कीरति सु तेरी अब बाहान भुजानि तरयो सागर  
तरंग मै ॥<sup>1</sup>

जिस हर और हरि ने इस संसार को बनाया है उन दोनों में कोई अंतर नहीं है हर के समान ही हरि और हरि के समान ही हर प्रतीत होते हैं ।<sup>2</sup> ईश्वर के अनेक रूपों में अनन्यता और अमदता का भाव यहाँ पर विद्यमान है । ईश्वर के अलग-अलग रूप होते हुए भी एक ही हैं इनमें कोई अन्तर नहीं ।

वैराग्य भक्ति का महत्वपूर्ण अंग है । भक्त अपने भगवान में पूर्ण रूप से विश्वास रखता है । उसे केवल वही प्रिय लगता है । इस पार्थिव संसार के प्रति उसके मन में नैराश्य का भाव उत्पन्न होता है । यह संसार उसके लिए अर्थहीन बन जाता है । किन्हीं में यह भाव स्थायी रूप से रहता है तो किन्हीं में समय-समय पर बलबुलों की तरह उठता और समाप्त होता रहता है । कवि को देखे तो उनका संसार के प्रति नैराश्य और विरक्ति का भाव स्थिर नहीं । कभी-कभी ही उठने वाले भाव काव्य के रूप में प्रकट हुए हैं । सुख के प्रति पूर्ण आसक्त रहते हुए भी व्यक्ति का मन दुःख के प्रति आशंकित रहता है क्योंकि वह स्वयं भले ही सुखी हो पर संसार में दुःख की ओर उसकी दृष्टि चली ही जाती है और तब वह जीवन के इस अंधकारपूर्ण पक्ष की ओर सोचने पर विवश हो जाता है । कवि के निकले नैराश्य के उद्गार इसी के परिणाम हैं । कहीं वह संसार की अज्ञातता पर अपने भाव व्यक्त करता है तो कहीं वह इस जीवन, यौवनवर्धन की अस्थिरता की बात

1- वही - <sup>प्र.सं.</sup> कन्द सं० 165,  
2- बालक और जुवान आ बूढे न जती न सतीन नारी न नांवर ।

अगरे मै केन अंगि अनंगि न दूबरे माने नर्थ वर नांवर ॥

बेद न जानत भेद दुहंनि क्ये रचना जग की जुगही कर ॥

यों कुंअरेस कहे हर से हरि ओ हरि से हम देख है हर ॥ वही- कन्द सं० 23

करता है फलस्वरूप ईश्वर के प्रति लगन लगाने की बात करता है। इस संसार में रहकर हम चाहे कितने भी नाते रिश्ते बना लें, उन्हें आजीवन निभाने भी रहें, लेकिन अंत समय तो सभी से नाता तोड़कर अकेले ही प्रस्थान करना पड़ता है। इसी कटु सत्य की ओर संकेत करते हुए कहते हैं -

काको सुत औ काको पितु है, काको धन ये काको बितु है ।  
काकी जननी काकी ललना, अन्ते हकले जी को चलना ॥<sup>1</sup>

एक अन्य स्थान पर भी कहते हैं -

मात पिता सुत बंधु सुता अरु नांती औ गौती के संगि न जाउं ॥  
दासी औ दासनि षास षासनि मितनि तै मन नांहि मिलाउं ॥  
शोरि जंगल यहै जग बाल को व्याल ज्यौं माल के व्याल बहाउं ॥  
काननि और कथा न सुनौ अकहूँ कानन बैठि कांह को गाउं ॥<sup>2</sup>

देह, यौवन और धन के तीनों वस्तुएँ नश्वर हैं इसलिए इनमें मन को रमाना नहीं चाहिए -

अति चल जोवन देह धनै, सुतनि सतै दर बंधु जनै ।  
हकदी पैढत कालपुरी तजि तजि रे मन बात बुरी ॥<sup>3</sup>

1- ल. ज. सिं० कृन्द सं० 789

2- वही- ष. त. कृन्द सं० 61

3- वही- कृन्द सं० 795

कबीरदास जी भी 'या देही काँ गरब न कीजे' ही कहते हैं। कबीरदास ने यह भी कहा है -

पानी केरा बुदबुदा अस मानस की जाति ।  
एक दिनां छिप जाह्यो ज्युं तारे परभात ॥ ३

हमारे आलोच्य कवि इस कुटुम्ब को दुःख की खानि बतलाते हैं -

कौन नारि कौन मात कौन पूत कौन तात ।  
ये कुटुम्ब दुष्ण षानि जीव येकरो सुजानि ॥ ४

इसके अतिरिक्त लेखपति जससिन्धु में कवि द्वारा प्रसूत नीतिपरक सूक्तियाँ भी मिलती हैं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि ये नीतिवादी कवियों में गिने जायें। इनकी ये सूक्तियाँ भी मानव-मन की स्वाभाविक स्थिति की परिचायक हैं। गाहे ब-गाहे व्यक्ति के मुख से नीतिपरक बचन निकलते ही रहते हैं। व्यक्ति को सदैव सत्य बोलना चाहिये, फूठ नहीं। यह सूक्ति तो बड़ों के द्वारा हर बालक को सुनायी जाती है। कुँवरकुशल ने भी कहा है -

बोल फूठ बोलिये न, नारि बैन षोलिये न ।  
काम धर्म जे करै जु, ते समुद्र मौ तरे जु ॥ ३

कबीरदास भी सत्य को सबसे बड़ा तप मानते हैं -  
साँच बराबर तप नहीं फूठ बराबर पाप ।  
जाके हिरदै साँच है ताके हिरदै आप ॥ ४

—

३ ल. ज. सि० छन्द सं० 754

४ वही - छन्द सं० 753

—

धर्म इस संसार में सबसे प्रमुख है। इसलिए कमी भी अपने धर्म को नहीं छोड़ना चाहिये। इसके लिए चाहे कबूल सहन करना पड़े चाहे अपमानित होना पड़े।<sup>1</sup> प्रत्येक व्यक्ति कह तो आसानी से जाता है लेकिन जब करने का समय आता है तो कहे बिना ही अडिग रह सकता है। अपनी कथनी को करनी का रूप देता है। इसलिए कहा गया है 'कथनी सरल करनी बड़ी कठिन। इसी तथ्य को से सम्बंधित कहते हैं -

लिषान पढ़न चतुर है सहल करन है जु जानि यह बातें ।

बसि ह्वै छप घौ मन महिये तौ सब तै जु कठिन है ॥<sup>2</sup>

कुर्म और सुकर्म पर चलनेवाला विवाद बड़ा ही पुराना है। लगभग सभी उपदेशकों, नीति वादियों और धर्मों ने इस सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। कवि ने भी कहा है -

मन सुभ मा अनुसरिये तरत भुजव उदधि अमित हकु फल में ।

अनुचित करम न करिये सरिद्य सिषा कुवर यह सुनिये ॥<sup>3</sup>

करहु धर्म यहै जग काच सौ सुषा सदा नर बोलत सांच सौ ।

तजिय या मन और तन आपनै बर बिलास सबै यह आगने ॥<sup>4</sup>

यह मानव शरीर नश्वर हो जानेवाला है यह स्थिर नहीं रहता इसलिए भगवद्भजन करना चाहिये -

1- सहि कुबोल साहस सकल अः पावत अपमान ।

धरम न तजि मनधीर ह्वै पंथ यह परम पुरान ॥ ल. ज. सि. चतुर्दश तरंग, १०१०००  
कन्द सं० 157

2- वही- पंचदश तरंग, कन्द सं० 508

3- वही- कन्द सं० 529

4- वही - कन्द सं० 831

काया कावी रंग न रावी छू जाया, बेटा बेटी चेटहि बेटी<sup>बस</sup> माया ।  
सांची बानी ये सुनि भौरे नर भह, दाने दीजे की रति कीजे सुषादाह ॥<sup>1</sup>

यहाँ पर आया हुआ कीर्ति शब्द राजा और ईश्वर दोनों के संदर्भ में हो सकता है । राजा की कीर्ति का बखान करके दान प्राप्त कर इस जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है । परन्तु छन्द की प्रथम पंक्ति इस तथ्य से सहमत नहीं होने देती । इसमें सांसारिक सम्बंधों की, संसार की तथा इस शरीर की नश्वरता की ओर इशारा किया गया है, इसलिए कीर्ति भगवद्भजन के ही अर्थ में मानी जा सकती है । विनय बड़े लोगों को सुशोभित होता है और गुण विनय से । गुणों पर लोग रीफतते हैं और रीफत कर धन प्राप्त किया जा सकता है ।<sup>2</sup> एक अन्य नीति कथन द्रष्टव्य है जिसमें वस्तुओं और गुणों के पारस्परिक सम्बंध पर विचार प्रकट किए गए हैं -

बेद बिनां कहुं जामिन बांभल्ल धर्म बिना नहिं बेद हू सोहै ।  
सील बिनां कुल ललनां लषि नीति बिनां नर नाथ न सोहै ।  
दीपै न राजसभा कबिता बिनु हाथीं बिनां दरबानन सोहै ॥  
सूर के हाथ हथ्यार बिनां कहि दान बिना जस गान सु कोहै ॥<sup>3</sup>

इसी तरह 'लखपति जससिन्धु' में साधुओं की संगति की बात भी कही गई है । इस संसार में आकर जन्म लेने पर साधु की संगति करनी चाहिये । साधुओं का संग करने से बुद्धि निर्मल होती है और चित्त में व्याा का भाव जाग्रत होता है ।

1- ल. ज. सिं० छन्द सं० 835

2- विनय बडनि को गुनि बरनि गुन सु विनय तै गाय ।  
गुन सो रीफवत जन सबे जन रीफत धन पाय ॥

ल. ज. सिं०, अ. त. छन्द सं० 59

3- वही - त्र. त. छन्द सं० 100

दयावश उपयुक्त पात्र को दान देकर फल की प्राप्ति करनी चाहिये, फिर इससे गिरधारी की प्राप्ति होती है और तत्काल सुख-प्राप्ति होती है -

पाह्यै जनम नर लोक नरलोकनि मै साधु संग संग सुभशास्त्र को विचारियै ।  
साधु संग शास्त्र संग बुद्धि सुद्ध तासु होहि बुद्धि सुद्ध भयै चित्त दया को  
विचारियै ।

दया के निहार दान पात्रनि को दीजियत पात्र दान दियै फल पावत है ।  
भारी फल भयै गिरधारी मिलै ततकाल गिरधारी मिलै सुष्ण देत  
निरधारियै ॥<sup>1</sup>

मुक्ति की प्राप्ति किस प्रकार की जा सकती है । इस पर भी अपना कथन प्रस्तुत किया है -

भोग तजै अरु जोग गहै गहि जोग सु तो बनवासहि जावै ।  
जाय रहै बन बासहि मै हरि के गुन माल की माल फिरावै ।  
फेरत माला भये गुन आला भई समद्रिष्टि सुब्रह्म सुहावै ।  
सोहत ब्रह्म मिलै ततकालहिं ब्रह्म मिले तब मुक्ति सुपावै ॥<sup>2</sup>

इसी भाँति इस भवसागर को पार करने के लिए किन्हीं बातों का पालन करने की बात कहते हैं -

1- ल. न. सिं० अ. त. कुन्द सं० 174

2- वही- त्र. त. कुन्द सं० 256

गुर ग्यान भरो सुभ ध्यान धरो हित की नित ही सतपथ गहो ।  
 परदार तजो भावान भजो पर प्यास जो नय रीति रहो ।  
 कर दान करो परनिंद हरो जन तै न लरो कुवेस कहो ।  
 मन भाव रणो सम नैन लणो भवसागर को डुमपार लहो ॥<sup>1</sup>

इस तरह कुँवरकुशल ने लखपति जससिन्धु में अपने भक्ति तथा नीति सम्बन्धी कथन को बड़े ही सहज तथा सरल रूप में प्रस्तुत कर दिया है जो शीघ्र ही हृद्यंगत किया जा सकता है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'लखपतिजसिन्धु' में राजा की प्रशंसा, वीरता, दान, वैभवं, उदारता आदि के साथ भक्ति और नीति रूपी रत्न भी उपलब्ध होते हैं । लखपति जी के यज्ञसागर में अनेक भावों की सरिताएँ स्वतः आकर मिल गई हैं । इससे न केवल महाराज लखपति का यशोगान ही हुआ है वरन् इस यशोगान के कारण 'लखपतिजसिन्धु' नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना हो गई है जो कवि कुँवरकुशल की स्थायी कीर्ति का आधार है और साथ ही हिन्दी काव्यशास्त्र की एक महत्वपूर्ण कड़ी है ।

### प्रकृति का चित्रण :

सृष्टि के प्रारंभ में मनुष्य प्रकृति पर पूर्णतया निर्भर था । फल-फूल, कन्द-मूल और प्राणों की पोषक वायु इत्यादि के द्वारा शरीर को विकसित करता था । इतना ही नहीं द्युषा को शांत करने के लिए वन्य पशु-पक्षी भी काम में आते थे।

इस सम्बंध में डॉ० चन्द्रपाल शर्मा का कथन द्रष्टव्य है - 'सृष्टि के प्रारम्भ में जब मानव की आँसु खुली तो स्वयं को प्रकृति की गोद में पाया। इस गोद में फलते हुए मानव ने प्रकृति को अपनी सकल इच्छाओं की पूर्ति करने वाली अकारण अपार व्याप्यी माँ के रूप में देखा। दिन भर इधर-उधर भटकते समय यही उसे भोजन के लिए फल-फूल, कन्द-मूल, प्रदान करती और यही उसको मधुर शीतल जल से तृप्त करने के उपरान्त अपनी क्रीड़ा में समीरण की थपकियों से मधुर निद्रा का सुख प्रदान करती थी।<sup>1</sup> डॉ० किरण कुमारी गुप्ता का भी कुछ ऐसा ही मत है।<sup>2</sup> इस प्रकार धीरे-धीरे प्रकृति और मानव का चिर साहचर्य सम्बंध बन गया। प्रकृति के उपयोगी स्वरूप के अतिरिक्त भी प्रकृति की अपनी स्वाभाविक कृपा को निहार कर मानव सुदखता का अनुभव करने लगा, प्रातःकालीन सूर्य की लालिमा नेत्रों को प्रिय लगने लगी, विह्वल वृन्द का मधुर कलरव कर्णोप्य बन गया और स्वयं मानव के हृदय में भी एक नई आशा का संचार हुआ। मनुष्य ने जब प्रकृति को एक उदार दाता के रूप में देखा तो मनुष्य के मन में उसके प्रति श्रद्धा, अहसानमन्द और पूजा का भाव उदित हुआ और सूर्य, पवन, इन्द्र, सोम इत्यादि के प्रति पूज्य भाव स्थापित हुआ। इस प्रकार ज्यों-ज्यों मानव की चेतना में श्रीवृद्धि होती गई त्यों-त्यों प्रकृति के साथ सम्बन्ध भी दृढ़ से दृढ़तर होते गए। अन्ततः प्रकृति को अपने भावानुरूप सुख में सुखी और दुःख में दुःखी समझा जाने लगा। फूलों के

- 
- 1- क्लृप्त वर्णन परम्परा और सेनापति का काव्य-डॉ० चन्द्रपाल शर्मा, पृ० ३३
  - 2- आरंभ से ही प्रकृति अपनी ममतापयी क्रीड़ा में मानव को धारण करती और उसका पोषण करती जा रही है। वायु व्यंजन करता, निर्झरों का कल-कल शब्द संगीत सुनाता, नदात्रगण गुपचुप कहानियाँ बजा कहते, कलिका चुटकी बनाकर पास बुलाती, चंद्रिका सिलखिलाकर हँस पड़ती, सूर्य अपनी ज्योति विकीर्ण कर देता और शीतल मन्द सुगन्धित समीर नवीन स्फूर्ति का संचार कर देता।

हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण-डॉ० किरणकुमारी गुप्ता १

खिलने पर हृद्योल्लास की अभिव्यक्ति त समझी तो आसक्तियों को किसी प्र के ओसू प्रतीत हुए और पतझड़ में फड़ने वाले पत्तों के माध्यम से जीवन की दाणाभांगुर स्थिति का अनुभव किया ।

पंचेन्द्रियों से निर्मित इस मानवीय शरीर ने रूप, रस, गन्ध स्पर्श और श्रवण पाँचों का अनुभव भी प्रकृति के तत्वों में से ही किया । प्रकृति की नैसर्गिक कृपा का अलोकन करते हैं उसके द्वारा प्रकृत मीठे-तीखे व कड़े खाद्य पदार्थों को सेवन करते हैं । फूलों की भीमी-मीनी सुगन्ध और पहली वर्षा की बूँदों के कारण मिट्टी में से उठनेवाली सौधी-सौधी सुश्रू अनायास ही मन को प्रफुल्लित कर देती है । फूलों की पंखुड़ियों का स्पर्श कर उसकी कोमलता और कौटों के द्वारा उसकी कठोरता का अहसास होता है, पक्षियों की चहचहाहट, नदियों व झरनों का कल-कल निवाद जहाँ एक ओर कर्ण प्रिय लगता है तो काले काले मेघों की धोर गर्जना सुनते ही मन मयभीत हो उठता है । इस तरह यह संपूर्ण मानव-शरीर प्रकृति के साथ सम्बंधित रहता है, अपने शरीर का तो विकास करता ही है, उससे प्रेरणा भी ग्रहण करता है और अपने चारित्रिक उत्थान में सहायक समझने लगता है इसलिए

इश्वर द्वारा सृजित इस संसार के एक बाह्य स्वरूप में प्रकृति अपना विशिष्ट महत्व रखती है । इस प्रकृति <sup>अथवा</sup> महत्वपूर्ण तत्व पृथ्वी, मिट्टी, जल और वायु पर मनुष्य प्रारंभ से ही पूर्णरूपेण निर्भर रह रहा है । हवा से साँस ग्रहण कर, मिट्टी में लोट-लोट कर, जल ग्रहण कर तथा इस सहिष्णु पृथ्वी पर गिर-गिर कर ही चलना सीखता है । फूल कौटों के बीच रहकर मानव को संकटों के मध्य हँसते रहने का पाठ पढ़ाता है तो विशाल पर्वत धैर्य का ज्ञान कराता है, वायु आगे ही आगे बढ़ने की ओर संकेत करती है तो तारे उज्ज्वलता के प्रतीक बनकर मानव को

शुभता धारणा करने के लिए कहते हैं। मेघ, वृद्धा, नदी परोपकारी बनने का सन्देश देते हैं। कोयल कुहू-कुहू कर मधुर वाणी श्रवण करने के लिए कहती है। इसलिए ही मनुष्य के स्वभाव को भी प्रकृति कहा जाता है। और उसकी कठोरता प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अडिग रहने के लिए सन्देश देती है। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त प्रकृति मनुष्य के चरित्र निर्माण में पग-पग पर सहायता व प्रेरणा देती है।

### प्रकृति का अर्थ :

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार- प्रकृति शब्द से आशय प्र = प्रकृष्ट, कृति- सृष्टि अर्थात् सृष्टि-कार्य में जो प्रधान है, वह प्रकृति है।<sup>1</sup> प्रकृति स्वयम् निर्मित है इसे किसी मनुष्य द्वारा नहीं बनाया गया। सृष्टि के निर्माण के साथ इस चराचर से समन्वित प्रकृति का भी निर्माण हुआ। प्रकृति या प्राकृतिक का अर्थ है स्वाभाविक, अतः प्रकृति के अन्तर्गत वही वस्तुएँ आती हैं जिन्हें मानव के हाथों ने सजाया या सँभाला नहीं है और जो स्वयं ही अपनी नैसर्गिक कृपा से हमें आकर्षित करती हैं।<sup>2</sup> अतः प्रकृति के अंतर्गत मानव से इतर समस्त वस्तुओं को समाहित कर सकते हैं। विशालाकार पर्वत मालायें, लहरों से उद्वेलित होता हुआ समुद्र, बहती हुई नदियाँ, फलों से लदे-फदे वृद्धा, उनसे लिपटती हुई लतायें, वृद्धाओं पर बसे हुए पक्षी सभी प्रकृति में सम्मिलित हैं।

1- कृत वर्णन परंपरा और सेनापति का काव्य-डॉ० चन्द्रपाल शर्मा, पृ० 23 से उद्धृत।

2- हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण- डॉ० किरणकुमारी, पृ० 8

3- मनु और उसको धारणा करनेवाले शरीर को तथा मनुष्य के निर्माण भाग को छोड़कर अन्य समस्त चेतन और अचेतन सृष्टि-प्रसार को प्रकृति स्वीकार किया जाता है।

प्रकृति और काव्य (हिन्दी मध्ययुग) डॉ० रघुवंश, पृ० 4

### प्रकृति और काव्य :

अब तक हम देखते हैं कि मानव प्रकृति पर पूर्णतः निर्भर है। प्रकृति का सौंदर्य निहार कर सुख प्राप्त करता है तथा अन्न व फल ग्रहण कर जीवन। आज भी भौतिकवादी युग में मनुष्य जब-जब शहरी वातावरण से घुटन अनुभव करता है तब-तब शहर से दूर प्रकृति के खुले प्रांगण में जाकर दो घड़ी विराम कर लेता है। नदियों के कल-कल की ध्वनि को सुनकर मन को प्रफुल्लित कर लेता है और वर्षा की हल्की-हल्की फुहार में भीगकर आनन्दविभोर हो उठता है। आज के मशीनी व व्यस्त जीवन में यह सम्भव नहीं कि वन की स्वाभाविक छटा का आनंद प्रतिदिन वहाँ जाकर लूटा जाये इसलिए कृत्रिमता का सहारा लिया जाता है। अपने प्रांगण में फूलों से बगियाचियों को सजाता है, पक्षियों की मधुर आवाज सुनने के लिए ताँते व त्यादि को पिंजड़े में कैद कर लिया जाता है। जब सामान्य व्यक्ति ही प्रकृति के प्रति बिमुख नहीं रह सकता तो सहृदय कवि के लिए तो कुछ कहा नहीं जा सकता। सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा उसमें ग्रहण करने की, अनुभव करने की तथा प्रेषित करने की शक्ति अधिक तीव्र होती है। इसलिए यदि उसके काव्य में प्रकृति का चित्रण मिलता है तो कोई अनुचित नहीं। बल्कि देखा जाये तो जिस कवि के काव्य में प्रकृति का सान्निध्य जितना अधिक होगा उतना ही उसका काव्य मनोहारी व उत्कृष्ट होगा। इस सम्बंध में डॉ० रघुवंश का कथन द्रष्टव्य है - 'प्रकृति का व्यापक विस्तार, उसका नाना रूपात्मक सौंदर्य हमारी स्वानुभूति का विषय हो सकता है। परिवर्तन और गति की अनन्त बेतना में मग्न प्रकृति युगों में मानव-जीवन से हिल मिल गई है। मानव उसके क्रांति में विकसित हुआ है; प्रकृति के युग-युग के परिचय का संस्कार उसमें साहचर्य भाव के रूप में सुरक्षित है। इन्हीं संस्कारों में कवि प्रकृति के समक्ष अनुभूतिशील हो उठता है; और अपनी कल्पना से काव्य-व्यंजना का रूप धारण करता है। इसी तरह महादेवी वर्मा भी कहती है - "वस्तुतः संस्कार-क्रम में मानव जाति का भाव जगत् ही नहीं, उसके चिन्तन की दिशाएँ भी प्रकृति से

विविध रूपात्मक परिचय द्वारा तथा उससे उत्पन्न अनुभूतियों से प्रभावित हैं<sup>1</sup>। इन अनुभूतियों का प्रकाशन कवि अपने काव्य में सहजता से कर लेता है और पाठक तक वही अनुभूतियों साधारणीकृत होकर तादात्म्य की स्थिति को प्राप्त हो जाती है। कवि ही वह व्यक्ति है जो प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में अपनी भावाभिव्यक्ति करता है।

हर युग से व काल में कवि का प्रकृति से सान्निध्य अक्षय रहा है। हाँ, प्रकृति को उपयोग करने की दृष्टि से परिवर्तन अक्षय मिलते हैं जो युगप्रेरित होते हैं। जैसा वाल्मीकि, कालिदास बाण तथा भवभूति के काव्य में प्रकृति के जिस नैसर्गिक व मनोमग्नकारी रूप का चित्रण मिलता है वैसा भक्ति तकालीन और रीतिकालिन कवियों में नहीं। भक्तिकाल में प्रकृति उपदेशिका बन गई तथा रहस्यात्मकता की ओर इंगित करती रही। रीतिकाल में नायिका की मनःस्थिति के अनुरूप चित्रित की जाती रही। रीतिकाल में प्रकृति का जिस प्रकार उपयोग किया गया है इस पर प्रकाश डालते हुए उमाशंकर शुक्ल कहते हैं कि - अतएव केलि-कुंज, पुष्प-वाटिका, चन्द्रोदय, शीतल मन्द समीर तथा विभिन्न ऋतुओं के स्थूल स्वरूपों तक ही इनकी दृष्टि जाती थी और वह भी नायक नायिका के मन में उत्थित भावों को उद्दीप्त करने के विचार से। इन कवियों की दृष्टि के अनुसार यदि शीतल समीर चलती है तो विरही बनों को जलाने के लिए, पुष्प खिलते हैं तो किसी नायिका के केशमाश को सजाने के लिए और कोयल बोलती है तो नायिका को प्रियतम का स्मरण कराने के लिए।<sup>2</sup> आधुनिक काल में उक्त दोनों कालों की अपेक्षा प्रकृति को अधिक महत्व मिला। छायावादी कवियों प्रसाद, पन्त, निराला तथा महादेवी वर्मा के काव्य के मूल में प्रकृति ही रही है। वास्तव में सच्चा कवि

1- सुमित्रानन्दन पंत-गोपालदास नीरज, सुधा सक्सेना, पृ० 85 उद्धृत।

2- सेनापति कृत कवित रत्नाकर (भूमिका, पाठान्तर तथा टिप्पणी सहित)

सम्पादक-उमाशंकर शुक्ल, पृ० 28-29

जहाँ एक ओर प्रकृति के मनोमुग्धकारी रूप का चित्रण करता है तो वहीं दूसरी ओर उसके भयंकर रूप को भी विस्मृत नहीं कर पाता। उष्ण देवी के आते ही पक्षी चहचहाने लगते हैं मानो उष्ण देवी के पैरों में बैठे हुए घुँघुँ की मधुर ध्वनि का आभास दिलाते हैं तो दूसरी ओर वर्षाकालीन काले-काले मेघ दैत्य का सा आभास दिलाते हैं। अतः कवि प्रकृति के सूक्ष्म और विराट, शांत और उग्र, सुन्दर और कुहूप दोनों रूपों का चित्रण सम दृष्टि से करता है। इतना ही नहीं कवि प्रकृति के बाह्याकार के साथ-साथ उसके आंतरिक सौन्दर्य का भी संश्लिष्ट चित्रण प्रस्तुत करता है और उसके साथ अपनी भावनाओं का तादात्म्य स्थापित करता है। वह प्रकृति की भाव भंगि पर विशेष ध्यान देता है, उस भाव भंगि से प्रभावित होकर हृदयस्थित प्रभाव को भी काव्य में अभिव्यक्त करता है। डॉ० किरणकुमारी गुप्ता का विचार है कि - "कवि प्रकृति के साथ अपने भावों का सम्बंध स्थापित करता है। वह वैज्ञानिक की भाँति प्रकृति के अणुओं का विश्लेषण नहीं करता, वह इसको निर्जीव नहीं मानता है अपितु भावनाओं का समन्वय करता है।<sup>1</sup> इसी कारण अपनी स्थिति के अनुरूप प्रकृति को सुख में सुखी व दुःख में दुःखी मान लेता है। इसलिए सीताहरण के पश्चात् राम वन के प्रत्येक पक्षी से सीता का पता पूछते हैं -

हे स्त्री मृग हे मधुकर श्रेणी तुम देखी सीता मृगयनी ।<sup>2</sup>

कभी प्रकृति के शांत व निश्चल सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कवि कह उठता है -

1- हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण-डॉ० किरणकुमारी गुप्ता, पृ० 16

2- रामचरितमानस-टीकाकार-हनुप्रसाद पोद्दार, पृ० 634

सिन्धु सेज पर घरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी सी ।  
प्रल्य निशा की हलचल स्मृति में मान किए सी रेंठी सी ॥<sup>1</sup>

इसी प्रकृति में रहस्यात्मकता का आभास पाकर उसके कण्ठ से आश्चर्य-  
मिश्रित उद्गार फूट पड़ते हैं -

न जाने कौन अये धृतिमान,  
जान मुझको अबोध, अज्ञान,  
सुझाते हो तुम पथ, अनजान,  
फूँक देते छिप्राँ में गान,  
गहे सुख दुःख के सहवर मौन ।  
नहीं कह सकता तुम हो कौन ।<sup>2</sup>

अन्ततः कहा जा सकता है कि आज मानव अध्ययन भरें ही काव्य का  
मुख्य विषय माना गया हो किन्तु प्रकृति के साहचर्य बिना मानव की चेष्टाएँ  
और मनोदशाएँ मयहीन सी प्रतीत होती हैं ।<sup>3</sup>

### लखपति जससिन्धु में प्रकृति चित्रण :

प्रकृति चित्रण की अनेक प्रणालियाँ प्रचलित हैं जो कवि की अपनी-अपनी  
रूचि को व्यक्त करती हैं, प्रत्येक जन-सामान्य की भाँति कवि का भी अपना  
निजी दृष्टिकोण रहता है और उसके निजी आदर्श रहते हैं उन्हीं की अभिव्यक्ति  
अपने काव्य में करता है । यह रूचि प्रत्येक काल के कवियों में तत्कालीन काल की

1- कामायनी - जयशंकर प्रसाद, पृ० २५

2- पल्लव-सुमित्रातर्दन पंत- पृ० १२

3- रसखान-काव्य तथा भक्ति भावना- डॉ० माजदा अहद, पृ० 161 से उद्धृत ।

विशेषता को भी प्रगट करते हैं। अपने वर्णन के उद्देश्य के अनुरूप प्रकृति का भी उपयोग किया जाता है। इसलिए प्रकृति चित्रण की विभिन्नता देखने को मिलती है। विद्यापति, सूरदास आदि कवि अपने आलम्बन के आँसुओं और उपांगों का वर्णन करने के लिए प्रकृति के तत्वों का उपमान रूप में चुनाव करते हैं तो तुलसीदास प्रकृति को उपदेशिका के रूप में प्रस्तुत करते हैं। रीतिकालीन कवियों ने भी प्रकृति को बहुधा उपमान रूप में ही चित्रित किया है। आधुनिक काल में प्रकृति के उपासक प्रसाद, पन्त और निराला आदि कवियों ने प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों को अपनाया है। प्रसाद ने धर्म प्रकृति देवी के चरणों में समस्त वसुधा को समर्पित कर दिया है, पन्त ने प्रेयसी प्रकृति की रूप सुधा का पान किया है और निराला ने उसको संचालिका शक्ति मानकर उसमें मानवीय भावनाओं का आरोपण किया है।<sup>1</sup> इस तरह विभिन्न रूपों में प्रकृति चित्रण मिलता है। कुँवरकुशल के 'लखपतिजससिन्धु' में प्रकृति चित्रण विविध रूपात्मक चित्रण है। रीतिकाल में प्रकृति चित्रण बहुधा नायक-नायिका के प्रेम प्रसंगों व आँसु सौन्दर्य की पृष्ठभूमि में ही होता रहा है। कुछ ऐसा ही वर्णन लखपतिजससिन्धु में भी हुआ है। यहाँ हम लखपति जससिन्धु में प्राप्त प्रकृति चित्रण के विविध रूपों पर विचार करेंगे।

### 1- आलम्बन रूप :

जब प्रकृति आलम्बन रूप में चित्रित की जाती है तब कवि का सारा ध्यान उमजुर्न के लिए पक्षी की केवल मात्र आँसु की तरह ही होता है। उसकी दृष्टि प्रकृति के स्वरूप व प्रभाव का ही अवलोकन करती है। यहाँ पर प्रकृति साध्य रूप में प्रकट होती है। कवि जिस तरह प्रकृति के दर्शन करता है ज्यों का त्यों उसे काव्य में भी चित्रित करता है। इस प्रकार के वर्णन में पूरी सत्यता निहित रहती है, कल्पना

1- हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण- डॉ० किरणाकुमारी गुप्ता, पृ० 26

का सहारा तो लिया जाता है लेकिन काल्पनिकता लेश मात्र भी नहीं होती अर्थात् कवि किसी प्राकृतिक दृश्य को देखने के पश्चात् अपने मस्तिष्क में सुरक्षित कर लेता है जब उसे चित्रित करता है तब सब कुछ एक चित्र की भाँति उसकी कल्पना में वह दृश्य आ जाता है। परन्तु सभी कुछ देखा हुआ होता है काल्पनिक नहीं। वह इस तरह संश्लिष्ट रूप में वर्णित करता है कि पाठक के सम्मुख वह सारा वर्णन उपस्थित हो उठता है अर्थात् इसमें चित्रात्मकता का गुण विशेष रूप से पाया जाता है। इस प्रकार का प्रकृति चित्रण हमें 'लक्षपतिजससिन्धु' में नहीं मिलता। एकाध ऐसे स्थान जहाँ पर सूरज केता की स्तुति की गई है उनमें थोड़ा सा आलम्बनत्व देखा जा सकता है।

### उद्दीपन रूप :

जब किसी के द्वारा किसी के हृदय में स्थित भावों को उद्दीपित किया जाता है तब उसे उद्दीपन कहते हैं। विभाव दो प्रकार के होते हैं - आलम्बन विभाव, उद्दीपन विभाव। उद्दीपन के अंतर्गत दो प्रकार के वर्णन मिलते हैं - एक तो नायक-नायिका के आँ प्रत्यंग तथा चेष्टाओं का वर्णन द्वारा बाह्य वस्तुओं का वर्णन। प्रकृति को इसी दूसरे प्रकार के वर्णन में रखते हुए उमाशंकर शुक्ल ने लिखा है - 'आचार्यों ने इसी दूसरे प्रकार के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत प्रकृति के विशाल सौन्दर्य में से वन, उपवन, सरोवर, षट्कृत आदि कुछ प्रमुख रूपों को स्थान दिया है।<sup>1</sup> इसी प्रकार डॉ० रघुवंश भी कहते हैं कि - 'जब किसी स्थायी भाव का अन्य कोई प्रत्यक्ष आलम्बन होता है, उस समय प्रकृति उद्दीपन विभाव के अंतर्गत ही विभिन्न रूपों में उपस्थित होती है। प्रकृति के संपर्क में रूप या परिस्थिति आदि के संयोग से मानवीय आलम्बन प्रत्यक्ष हो जाता है अथवा उससे सम्बंधित भावों को उद्दीपन की प्रेरणा प्राप्त होती है।<sup>2</sup>

1- सेनापति कृत कविच रत्नाकर (भूमिका, पाठान्तर तथा टिप्पणी सहित) -

सम्पादक-उमाशंकर शुक्ल, पृ० 27

2- प्रकृति और काव्य (हिन्दी मध्ययुग) रघुवंश, पृ० 76

डॉ० माजदा असाद भी इसी प्रकार अपने विचार प्रस्तुत करते हैं।<sup>1</sup>

अन्य कालों की अपेक्षा रीतिकाल में प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण अधिक हुआ। इस काल में विशेष रूप से श्रृंगारिक वर्णन मिलते हैं वह भी शारीरिक प्रेम को महत्ता देते हैं। इस शारीरिक प्रेम को उद्दीप्त करने में प्रकृति का विशेष योगदान रहा है। इन कवियों के आलम्बन नायक-नायिका ही रहे। इनकी मनःस्थिति के अनुसार ही प्रकृति चित्रित की जाती रही। वर्णन अधिकांशतः परम्परागत ही मिलता है। इस काल में कवि अधिकांशतः कवि प्रकृति के प्रांगण से दूर राजप्रासाद में रहते थे इसलिए इनके वर्णन में नवीनता कम मिलती है। इस सम्बन्ध में डॉ० किरणाकुमारी गुप्ता का कहना है कि - 'नगर के कृत्रिम वातावरण में ये जीवन-यापन कर रहे थे। वाल्मीकि की भाँति ये कवि न तो प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में घूमे थे, न इन्होंने स्वयं निरीक्षण किया था, और न प्रकृति उनके अनेक भावों की पोषिका, हर्षा विषाद की सम-भागिनी अनन्य मित्र ही रही थी। राज-प्रासादों के अतुल वैभव, विलास और संकुचित वातावरण में ही उनका जीवन बीता, उनकी दृष्टि सीमित रही।'<sup>2</sup>

कुँवरकुशल ने लक्षपतिजससिन्धु में प्रकृति का उद्दीपन रूप में ही अधिक चित्रण किया है। संयोग पदा और वियोग पदा दोनों के अंतर्गत प्रकृति का चित्रण हुआ है। प्रथम हम उनके संयोग पदा को लेते हैं -

- 1- जब किसी स्थायी भाव का आलंबन प्रकृति न होकर अन्य कहे प्रत्यक्षा आलंबन होता है, उस समय प्रकृति भावों को उद्दीप्त करने के कारण उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आती है।

रसखान काव्य तथा भक्ति-भावना-डॉ० माजदा असाद, पृ० 164

- 2- हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण- डॉ० किरणाकुमारी गुप्ता, पृ० 39

नायक-नायिका के हृदय में प्रेम भाव स्थायी भाव के रूप में स्थित रहता है । इस प्रेम भाव की पोषिका वायु भी रहती है । प्रेम को और अधिक तीव्रता प्रदान करती है । नायिका के पास जब नायक आता है तो ठण्डी वायु भी उसे अत्यन्त प्रिय लगती है, रवि<sup>जो</sup> कि प्रचण्ड ताप छोड़ता है प्रिय की उपस्थिति में तनिक भी कष्टदायी नहीं लगता और ए शशि को शीतल प्रकाश तो और भी अधिक प्रिय लगाने लगता है -

सीरो पवन सुहावें आये पीठ जब घर मेरे ।  
रवि ससि सौ तन भावें आली नीकौ सब रसे ।<sup>1</sup>

वृन्दावन की स्थली प्रेमियों के लिए बड़ी आकर्षित करने वाली रही है । कृष्ण और गोपियों तथा कृष्ण और राधा के प्रेमाङ्कुर भी यहीं पर पल्लवित व विकसित होते रहे हैं । चूंकि रीतिकाल के नायक नायिका भी सामान्य घरातल पर राधा और कृष्ण ही बने हैं । इसलिए कुँवरकुशल की नायिका भी नायक से यही कहती है कि इस समय कड़ी धूप है, दोपहर का समय वृन्दावन की इस शीतल स्थली पर व्यतीत करके सायंकाल को चले जाना । अपरोक्ष रूप से नायिका यही संकेत करती है यह स्थल प्रेम करने के योग्य है -

वृन्दावन की कृबि बनी शीतलता सरसाई ।  
रहो लाल दुपहर इहाँ घाम गये घर जाई ॥<sup>2</sup>

बिहारी ने भी मालती कुंज के साथ यमुना नदी का किनारा तथा तमाल के वृक्षा को भी सम्मिलित कर लिया है -

1- ल. ज. सि० चतुर्विंश तरंग, कन्द सं० 488

2- वही -<sup>पं. सं.</sup> कन्द सं० 23

धाम धरी क निवारिये, कलित ललित अलि पुंज ।  
जमुना तीर तमालतरु, मिलत मालती कुंज ॥<sup>1</sup>

वर्णाश्रुत प्रेम को उद्दीप्त करने में विशेष रूप से सहायक बनती है ।  
उनमें आपस में मिलने की उत्कट अभिलाषा जागृत हो जाती है । नायिका सीधे  
नायक से कुछ नहीं कहती वरन् बाह्य वातावरण का अर्थात् वर्णा के पढ़ने पर  
होनेवाले प्रभाव को कहती है -

फरबानिहुं मैं धूम्र<sup>लुमें</sup> को बनाउ लणि  
भू में अपारै मेघ धारै बरसाइ है ।  
कुंज कुंज वेलि पुंज फूले फूले फूल गंज,  
मंजु मंजु मोरनि की गुंज कानी आइ है ॥  
जल जल किस है एक हलचल न होत कहुं,  
पावस प्रबल महा शोभा सरसाइ है ॥  
मोरनि को जोर धोर सोर ओर सुनिये न,  
विधि यह बेर तोर भाग कौ बसाइ है ॥<sup>2</sup>

यहाँ पर अप्रत्यक्ष रूप से नायिका इस सुन्दर समय की ओर आकर्षित  
करती है ।

वर्णाश्रुत में यदि नायक अथवा नायिका दोनों में से कोई मानावस्था  
में होता है तो भी उनका मान रहने ~~की~~ नहीं पाता । ऐसे समय नायक यदि चलने

1- बिहारी- विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 201

2- चं.त.  
ल.ज.सि०, कुन्द सं० 19

की बात कहता है तो नायिका को अच्छा नहीं लगता ।<sup>1</sup> इसी प्रकार दूसरे स्थान पर नायिका भानावस्था में है, सषी उसे समझाते हुए यही कहती है कि बाकल गरज रहे हैं, मोर शोर कर रहे हैं आकाश में काम की कमान चढ़ी हुई है अर्थात् वर्षा हो रही है और बिजली भी अपना स्वरूप प्रगट कर रही है । पीली हरी श्वेत काली घटाएँ बुझिवान हो रही हैं सुगंधित वायु भी प्रवाहित हो रही है ऐसे समय में मान तो रहेगा नहीं फिर प्रियतम के साथ मनमाने वाली प्रेम की बातें क्यों नहीं करती -

घोर उठी घन की चिहुँ औरनि मोरनि कूकिकेँ शोर सुनायौ ॥  
 अंबर काम कमान चढ़ी लषि दार्मिनि दौरि केँ रूप दिषायौ ॥  
 पीरी हरि सित कारी घटा बुति लीन्है सुगंध समीर सुहायौ ॥  
 मान बिदान रह्यो न ब्रह्मके कंत सौँ क्यों न करे मन भायौ ॥<sup>2</sup>

वर्षा हो रही है, आकाश में बाकल छायें हुए हैं बिजली चमक रही है, लताएँ भी वृक्षाओं से लिपट गई हैं सषी को आश्चर्य होता है कि नायिका अभी तक अकेली क्यों है, प्रिय के पास क्यों नहीं गई, क्योंकि यह समय ही ऐसा है जब पेड़ लतायें तक साहचर्य अवस्था में है तो नायिका मनुष्य होकर क्यों अकेली है -

लतनि त्हरनि लपटानी वरणा लषि तडित नम गावै ।  
 अलि तुम अजहु अयानी नाह्यु औ लपटि नीकै ॥<sup>3</sup>

- 
- 1- सघन घार घन बरि बरसि है मैन कुड़ावै मान ।  
 चलिबै की बातें घ चतुर कहा सुनावत कान ॥ वही-<sup>पं-रा.</sup>कन्द सं० 22
- 2- वही-<sup>पं-रा.</sup>कन्द सं० 27
- 3- ल. ज. सि० चतुर्दश तरंग, कन्द सं० 511

असन्त कृत भी नायक-नायिका को आकर्षित करने वाली है इसलिए नायिका असन्त कृत के आगमन पर नायक को फाग खेले के लिए प्रेरित करती है -

देष्ण कंत ये असंत चालि बाग षोलि फाग ।<sup>1</sup>

वियोग पदा :

जिस प्रकार संयोगावस्था में नायक-नायिका को प्रकृति आकर्षित करती है, उनके हृदय में उल्लास व प्रसन्नता भर देती है उसी प्रकार वियोगावस्था में वही प्रकृति उनको कष्टदायी प्रतीत होने लगती है। इसलिए प्रियतम पास में न हो तो सभी वस्तुओं की परिभाषा बदल जाती है।

उदाहरणतः

धुसका न जानि सष्णी ये दल मदन कौ है बुद्धियां न हौहि बान  
फर बरसह है ।  
गरजि न जानि ये नगारनि की घोरें जोर जगत न जानि जेत  
जाम की जगह है ।  
बगुलां न पंति ये पताका सेत पट की है दादुर न घोर ये नकीब  
सोर गह है ।  
बालिम विदेस बर बिरहनि मारिब कौ बीजुरी न हौहि सम्सेर  
दुषादह है ।<sup>2</sup>

1- ल. ज. सिं० चतुर्वेद तरंग, सं० 705

2- वही-असन्त सं० 83

यों तो चैत मास की चाँदनी मंद-मंद समीर चंदन और फूल सभी वस्तुएँ सुखदायी लगती हैं परन्तु प्रिय पास नहीं है इसलिए सभी विपरीत प्रभाव डालती हैं चाँदनी चैन नहीं लेने देती, मंद समीर आँसों में अश्रु पैदा करती है, ठंडा चंदन आग लगाने वाला प्रतीत होता है और फूल अपनी कोमलता के कारण मुलायम न लगकर काँटों की तरह चुभने वाले बन जाते हैं -

चैत के चंद्र की चाँदनी चित्त को चैन न देत चाहि है ॥  
 मंद समीर साँ लागै शरीर अवीरता आँ में आवति है ॥  
 वाचना चंदन आली विलेपन काय पै लाय लावति है ॥  
 सूल के तूल ह्वै फूल लगै तन काहे कोँ सेभुं बिछावति है ॥<sup>1</sup>

यहाँ पर 'काहे कोँ सेभुं बिछावति है' से ध्वनित होता है कि प्रिय वियोग के कारण और कष्टदायक वस्तुओं के कारण उसे नींद तो आती नहीं फिर सेज बिछाने का क्या अर्थ? अन्य स्थल पर भी ऐसा ही भाव अभिव्यक्त किया है -

सेज गुलाब सुहात नहिं चंदन चित्त संताप ।  
 अलि ये नीर गुलाब कोँ तन उपजावत ताप ॥<sup>2</sup>

ऐसे समय में चन्द्रमा और सूर्य भी आग उठ उगलने वाला प्रतीत होता है -

ससी नहीं आकास यह भय लागति अलि भागि ।  
 तेजवत रबि राति कोँ यह अलि वडवा आगि ॥<sup>3</sup>

- 
- 1- वही-<sup>प्र.त.</sup> छन्द 166  
 2- वही - छन्द सं० 256  
 3- वही - छन्द सं० 85

बिहारी की नायिका भी जुगनूओं को आग उगलने वाला समझती है और सखियों को अन्दर भाग जाने के लिए कहती है ।<sup>1</sup>

प्रिय के साथ संयोगावस्था में जहाँ जहाँ घूमे थे, अथवा समय बिताया था, वियोगावस्था में उन्हीं स्थलों पर जाने पर उनकी स्मृति आ जाती है और सारा वातावरण ही मानो बदल जाता है -

‘कालिह गड़ ही मैं कूल कालिंदी के  
केकी न कोकिल कूक करे ॥  
बाढ़ हिये दुष्ण ठाढ़े है ग्वाल ओ  
चित्र के काढ़े न गैया चरे ॥  
आली नहीं बनमाली उहाँ बन षाली ।  
वियोग तैं नैन भरें ॥  
बेली नहीं चमेली सु फौली है कुंज मैं  
मैलि के फूलनि आँसू भरें ॥<sup>2</sup>

इसी प्रकार वृष कृष्ण की स्मृति का भी दृश्य प्रस्तुत किया है । व्रज में रहते हुए वन में जो कुछ भी करते थे मथुरा में रहकर उन्हें सभी कुछ याद आता है और याद आते ही आँखों के सामने सारा दृश्य घूम जाता है -

1- बिरह जरी लखि आननि कही न वहि के बार ।  
अरी आउ भजि भीतरै बरसत आनु आर ॥  
बिहारी-सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 233

2- ल. ज. सि०<sup>द.स.</sup> अ. अ. सं० 16

वहै वृंदावन अंजु कुंज कुंज पुंजनि में गुंजनि के हार हीर प्रहरै  
 पहिरह बाँ ।  
 ग्वालनि के बालनि सौं ब्याल करै ताल दैके बंसीबट बैठी गीत  
 सारंग कौ गह बाँ ।  
 पवन झकोर वहै मोरन की जोर छोर ठोर ठोर फिरै नीकी  
 गह अनि चराह बाँ ।  
 इतनो ये कहिये तैं आयौ वृज औंषान में भूले सब काम पाँन  
 भीतरी ही जाह बाँ ॥<sup>1</sup>

जब किसी की स्मृति आती है तो चित्त उद्विग्न हो उठता है, किसी काम में मन नहीं लगता और उस समय भीड़-भाड़ से अलग-थलग एकान्त में बैठने की इच्छा जागृत हो जाती है। इस स्वाभाविक वृत्ति का चित्रण अंतिम पंक्ति में हुआ है।

जिस प्रकार संयोगावस्था में वषा<sup>1</sup> कृत हृद्य में उल्लास व प्रसन्नता भर देती है वियोगावस्था में अत्यन्त कष्टदायी बन जाती है। बादलों की गर्जना से भी डर लाने लगता है, चंचल बिजली और सुखदायी पवन की मार पत्थर की तरह लगती है<sup>2</sup> जब से नायिका ने बादल की आवाज सुनी दुःख ने भी पालतान दिये अर्थात् दुःख आ जाता है, प्रियतम के अभाव में घने काले बादलों से डर लगता है।<sup>3</sup> चारों ओर बादल छाये हुए हैं, बिजली भी धारदार तलवार की तरह

1- वही- षा. त. कन्द सं० 64

2- बरषात जलधर गरजत गगन तडित बपल अति सुषाद ध्वन गति बासंता ।  
सरिध फत्थर समहि यहै अबलों आये नहि कथा ॥  
ल. ज. सिं० चतुर्दश तरंग, कन्द सं० 253

3- बरही गन के जब बोल सुने, तब ते तन में दुष्ण पाल तने ।  
घहरात घने घन ते डरिये, अब कंत नहै अलि क्यौं करिये ॥

वही - कन्द सं० 822

प्रतीत होती है, बूँदें बाण की तरह लगती हैं और धैर्य भी कूटने लगता है, प्रचंड वायु के कारण शरीर में कंपकंपी होने लगती है और काली रात्रि दुखदाह बन जाती है इस दुःख को या तो यमराज ही दूर कर सकता है अथवा कंत -

घोर करेँ जल चिहुँ और घनाघन दामिनि तै ज्यौँ देत दिषाहँ ।  
 बूँदें लौँ अति बाँत तै पैनियै घोरज छाँडि अधीरता अहँ ।  
 पौन वहै परचंड महातन कंपत कारी निसा दुषादाहँ ।  
 कै दुषा अंत करै जमराज जु कै दुषा कंत हरै सुनि माहँ ॥<sup>1</sup>

शरद ऋतु भी नायिका के लिए कष्टदायी बन जाती है। शरद ऋतु में रात्रि बड़ी सुहावनी हो जाती है, नायिका को दुःख होता है कि ऐसे समय में भी प्रिय घर आने की सुधि नहीं लेते और नायिका को बिना प्रिय के एक क्षण भी आराम नहीं आता।<sup>2</sup> शरद ऋतु की रात्रि में सुख देने वाला चन्द्रमा उदित हो गया है उसकी सुन्दर चाँदनी क्लिप्त रही है, ऐसे समय में नायक के मन में चलने का विचार आता है तो नायिका को आश्चर्य होता है और उसे गोपियों के साथ रहने के लिए कहती है -

सरद ऋतु सही येँ काहन देषागे सदाहँ, ससि दुति सुषादायँ बौन्ह नीकी सुहाहँ ।  
 चलत समय कसौँ चित में यौँ बिचारौँ, धरि मुकुट रसीले गोपियँ संग धारौँ ॥<sup>3</sup>

1- वही <sup>प्र.त.</sup> कृन्द सं० 288

2- रुचिर रचतबिघ रजनी अलि पिय सुरति न करत सरह घर की ।  
 सोह नि तन लगि, सजनी करु इकु पल न परत मन में ॥

वही - पंचदश तरंग, कृन्द सं० 527

3- ल. ज. सि०, कृन्द सं० 857

इसी तरह बसंत ऋतु भी अत्यन्त पीड़ित करती है। बसन्तु ऋतु में चारों ओर हरियाली बह रही है, पेड़ अपने फूलों से लदे फंदे रहते हैं, मंद मंद समीर भी प्रवाहित होती रहती है। वन में पुष्प खिले हुए हैं ऐसे समय में प्रिय क्यों नहीं आ रहा है। नायिका को डर लग रहा है कि अगर प्रियतम को मान करते देख कहीं कामदेव भी मान न कर बैठे।<sup>1</sup> कुसुम पर भौरों के समूह गुँजार कर रहे हैं और वन में बसंत छाया हुआ है ऐसे समय में प्रिय को जाने से बरजती है।<sup>2</sup> चैत महीने में शुभ चन्द्रमा निकला हुआ है, पवन भी मदमस्त कर देने वाला है, फूलों की सुगन्ध बिलखी हुई है, ऐसे समय में ईश्वर से कामना करती है कि कब प्रिय का संग मिलेगा।<sup>3</sup> बसन्तु ऋतु में वन में फूलों का वास है, अब भी प्रिय का आगमन नहीं होता, आम के वृक्षा पर कोयल भी कूक कर रही है, कोयल की कूक सुनकर हृदय में एक हक सी उठती है -

बनि फूल बास बसंत अहू न आवत कंत ।

किय अब कोयल कूक ह्यि मांभि हूकत हूक ॥<sup>4</sup>

रसखान की नायिका भी ऐसा ही अनुभव करती है -

हूक सी सालत है ह्यि में, जब बैरिक कोयल कूक सुनावत ।<sup>5</sup>

1- कुसुम कलित लषि कानन पिय पै ये र् कठिन ह्यि क्यों है ।

मान तुम्हें लषि माननि करिहैं कर काम धनुषा गुटिका को ॥

वही - पंचदश तरंग, छन्द सं० 540

2- कुसुम जुत कुं गनभमर गुं बन लषि बसंत कित चलत कंत । वही, छन्द सं० 743

3- सुम चैत चंद उजास मद पौन फूल सुवास ।

सुषा सेज पै पिय संग रचि हो कबै विधि रंग ॥ वही, छन्द सं० 774

4- ल. ज. सिं०, छन्द सं० 775

5- रसखान कु काव्य तथा भक्ति-भावना- डॉ० माजदा अंसद, पृ० 166 से उद्धृत ।

कोयल बहुत प्रकार से गा रही है, भौरे भी गुँजार कर रहे हैं, शरीर को भी काम पीड़ित कर रहा है ऐसे समय में तो प्रिय को आ जाना चाहिये -

बहु गान कोयल बाल मधु गुंज गुंज रसाल ।  
तन देत काम जु ताप पिय क्यों न आवत आय ॥<sup>1</sup>

फूलों पर भौरे गुँजार कर रहे हैं, मधु मास में अम्बवा पर कोयल का स्वर मुखरित हो रहा है, शीतल, मंद, सुगन्ध पवन ला रही है ऐसे में प्रियतम का गमन करना उसे तनिक भी नहीं सुहाता ।<sup>2</sup>

संयोगावस्था में पदायों की मधुर वाणी मन को मोहित कर लेती है, उनकी आवाज सुनकर नायिका के मन में प्रेम और भी उद्दीप्त होने लगता है परन्तु प्रिय के दूर होने पर वियोगावस्था में उन्हीं पदायों के स्वर सुनकर हृदय कष्ट का महसूस करने लगता है, उन्हें सुनकर एक प्रकार की पीड़ित कर देने वाली हूक सी उठने लगती है । कुछ इसी प्रकार का भाव यहाँ पर अभिव्यक्त हुआ है -

नाही कान्हो केकी कूँ आली री ये ही में हूँ ।<sup>3</sup>

ठौरें ठौरें केकी केका भारी अण अण धौरें बोलें मेका बुनी संपा चालें  
जामि कंता नाही काया कपे ।<sup>4</sup>

1- ल. ज. सिं० छन्द सं० 776

2- गुर बेलि फूलनि पै करँ अलि गुंज है, मधु मास अंबनि कौकिल सुर मंजु है ।  
पुनि तीत मंद सुगंध लागत पौन है, गुणावंत पीतम क्यों करे अब गौन है ॥  
वही - छन्द सं० 855

3- वही - छन्द सं० 700

4- ल. ज. सिं०, छन्द सं० 748

केकी कोकिल भ्रं के सुने श्रवनि तैं सोर ।  
गढ धीरज ड्राह्यौ गुरून कटक काम करि जोर ॥<sup>1</sup>

### उपमानों में रूपाकार :

इस प्रकार का प्रकृति-चित्रण नायक-नायिका के आंगिक सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है। प्राकृतिक उपमानों की सहायता से उनके आंगों की समता बताई जाती है। डॉ० रघुवंश के कथनानुसार- कभी-कभी रूप-सौन्दर्य उपस्थित करने के लिए भिन्न-भिन्न आंगों की सौन्दर्य-व्यंजना अलग-अलग उपमानों से की जाती है, और इस प्रकार एक चित्र पूरा किया जाता है।<sup>2</sup> रीतिकालीन कवियों ने विशेष रूप से इस प्रकार की प्रणाली को अपनाया है। नायिका के शिख-नख अथवा शिख-नख वर्णन प्रस्तुत करने के लिए प्रकृति के तत्वों को उपमान के रूप में प्रयोग किया है। लखपति जससिन्धु में भी इसी प्रकार का चित्रण प्रस्तुत किया है। राधा का शिख-नख वर्णन प्रस्तुत करते हुए लिखा है -

मुष्ण ससि लैं नीकौ महाधनु भौह धरी है ।  
द्रा म्हा म्हीतै विधे, पुतरी सुपरी है ।  
सुक पंचा नाता सही, लषिण अघर लल है ।  
दात हीर से देणियै बिच पंति बन है ।  
कुहक कोकिला कंठ की कुंठु गल कहियै ।  
कुच चक्का से जानिके त्रबली तरह हियै ।  
कटि के हरि ऊरु करी, गति हंस गना है ।  
ऐसी लषिण राधे अली किय प्रीति कन्ह है ॥<sup>3</sup>

1- वही-<sup>दा.त.</sup>कन्द सं० 27

2- प्रकृति और काव्य (हिंदी मध्ययुग) रघुवंश, पृ० 82

3- ल. ज. सिं० चतुर्दश तरंग, कन्द सं० 292

इसी प्रकार नख-शिख वर्णन भी चित्रित हुआ है -

चरन पै कमल ओ जंघ पै केलि तख्त केसरी लंक कटि पै उतारो ।  
नाभि दरद किये कुम्हनि परबत कलस कंठ पै कोकिला कुंठु टारो ।  
अधर से लाल ये बिंब पर बाल नहीं बसन हीरकन और दारो ।  
नासिका कीर मृग मीन दृग षजने <sup>राधिका</sup> ~~अबिकन~~ बदन पै चंदन वारो ॥ <sup>1</sup>

यहाँ पर आँखों के लिए सुप्रसिद्ध मृग, मीन, खंजन तीनों उपमान दिये हैं जिन्हें आँखों की सरलता, चंचलता और विशालता धोतित होती है ।

इसी प्रकार मुख पर लगी लाल बिंदिया को भी सम्मिलित करते हुए लिखा है -

चंद पै लालसुबिंद लसै लणि नैननि ही पै कमान चढी भल ।  
विद्रुम के बिचि दाने अनार के और अनार मै हीरनि कौ थल ॥  
कंचन बेलि पै केलि कै है फल केलि पै अति लगे जुग श्रीफल ।  
संषा तै बीनां कौ नाद बने सुभ बोलि कपोल की बोलत कोकिल ॥ <sup>2</sup>

नायिका का चन्द्र मुख वस्त्रों के बीच किस प्रकार सुशोभित हो रहा है इसके लिए बादल और बिजली का उपमान देते हैं -

मीन नयन ससि मुष्ण पिय सुभ है और चरन गति सिषात जु हम है ।  
औपित असित बसन हमि अकल चालत नभ महि जिमि घन चपला ॥ <sup>3</sup>

1- ल. ज. सिं० छन्द सं० 648

2- वही-<sup>प्र. त.</sup> छन्द सं० 164

3- वही- छन्द सं० 845

नायिका के नेत्र, मुख और कंठ को देख सुनकर मछली, चकोर और प्रिय भी भ्रम में पड़ जाते हैं।<sup>1</sup> इसी प्रकार भौरों भी भ्रम में पड़ जाते हैं और उसके मुख को कमल समझ बैठते हैं।<sup>2</sup> नायिका की नाक तांते सदृश और हाँठ बिम्ब सदृश हैं तो कवि व्याणस्तुति से प्रशंसा करते हुए कहता है कि तांते ने ऐसा कौन सा कठोर तप किया है कि तांते ने ऐसा कौन सा कठोर तप किया है कि जिसके परिणाम स्वरूप वह सदैव बिम्बाफल के स्वाद का आस्वादन करता रहता है -

कीर कौन से बन कियोँ असौँ तप अकलंक ।

बने अघर से बिंब कौँ स्वाद जु लेत निसंग ॥<sup>3</sup>

इसी प्रकार की नायिका के स्तनों के लिए कनकलता के फल कहा<sup>4</sup> और काली लम्बी चोटी के लिए नागिन उपमान बताया।<sup>5</sup> कुँवरकुशल ने जहाँ नायिका के रूप सौन्दर्य को चित्रित करने के लिए प्राकृतिक उपमानों का सहारा लिया है उसी प्रकार नायक का रूप-सौन्दर्य भी इन्हीं परम्परित उपमानों को लेकर वर्णित किया है। कृष्ण का जन्म अष्टमी के दिन हुआ था इसलिए 'अष्टमी के राज' का प्रयोग किया है, मस्तक(ललाट) विशाल है उस पर लाल टीका सुशोभित है। कमान के सदृश टेढ़ी भौंहें, बाण के समान ल नेत्र, तांते जैसी नाक जो नारी के मन को मोहित कर देती है, अघर लाल बिम्ब से है, दाँतों की पंक्ति दाढ़िम के दानों की तरह हैं, चंद के

1- नेत्र निलिषि क्कण सुषा नहीं चाहें बदन चकोर ।

कंठ सुन्त पिय यों कहै सुषाद कहाँ पिक सौर ॥ वही, <sup>प्र.त.</sup> कन्द सं० 94

2- दुनि क्वि नामें दिव्य अ मारिनि कौ मुषा मौर ।

करि बषाँन कुँअरेस कवि चाहें भौर चकोर ॥ वही, <sup>प्र.त.</sup> कन्द सं० 20

3- ल. ज. सि० <sup>प्र.त.</sup> कन्द-192

4- नहिँ अनियारे नयन ये सणि ये देणि सराण ।

कनकलता फल कवि कहै उर पै नाहिँ उराण ॥ वही, कन्द सं० 81

5- लैंब सिलसिली क्वि लसै अनीरुद्ध अभिराम ।

नागिनि नहिँ यह नागरी सिर पै बनी स्याम ॥

वही- कन्द सं० 79

समान उज्ज्वल मुख, कम के समान सुवासित मुख बिहारी का है -

अष्टमी के राज राज नैसो वृजराज भाल उदित विसाल लाल टीका छबि  
भारी कौ ॥

कमान सी बंक भौहें बान पैने नैन सोहै सुक चंचानासा जो है मन मोहै  
नारी कौ ॥

अधर प्रबाल बिब से है लाल कुंअरेस दंत कौ विप्राउ दारयो दाने  
हीर ध्यारी कौ ॥

चंद सौं उजास कर कम सौं सुबास भर सोमा सिगरी कौ धर मुषा है  
बिहारी कौ ॥<sup>1</sup>

अलंकारों के माध्यम से प्रकृति वर्णन :

आलंकारिक पद्धति पर वर्णन करने के लिए भी प्रकृति के उपादानों का पर्याप्त प्रयोग किया है। अपनी बात जब सीधे-सीधे न कहकर प्रभावशाली ढंग से कहें तो इसके लिए अलंकार का सहारा लेना पड़ता है। इस सम्बंध में डॉ० किरणाकुमारी गुप्ता का कथन द्रष्टव्य है - 'सौन्दर्यानुभूति से प्रभावान्वित मानव अभिव्यक्तिकरण के लिए व्याकुल हो जाता है। वह अपनी सौंदर्य-भावना को इस प्रकार व्यक्त करना चाहता है कि अन्य व्यक्ति भी केवल श्रवण मात्र से उस सौंदर्य का अनुभव कर सके। अपनी इस सौंदर्यमयी अभिव्यक्ति के लिए उसको विशेष उपकरणों की सहायता पड़ जाती है। उसका अनुभूतिपूर्ण हृदय रससिक्त तो होता ही है किन्तु उस रससिक्त हृदय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उसे अलंकारों और शब्द-शक्तियों का सहारा लेना पड़ता है।<sup>2</sup> कुँवरकुशल ने लखपतिरससिन्धु में अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का समुचित प्रयोग किया है और इनमें

1- ल. न. सि० प्र. त. अ. छन्द सं० 8

2- हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण- डॉ० किरणाकुमारी गुप्ता, पृ० 49

भी प्राकृतिक उपकरणों को स्थान मिला है। कुंवरकुशल की नायिका के सौन्दर्य के आगे सभी प्राकृतिक उपादान तुच्छ जान पड़ते हैं। मृग नायिका के नेत्रों के समदा कोहल महत्व नहीं रखते, इसलिए वे जंगल से कभी भी बस्ती की ओर नहीं आते। कमल और मकलियाँ भी जाकर पानी में छिप गये हैं, राधा के मुख को देखकर तो चन्द्रमा भी दूर आकाश में चला गया और मंद पड़ गया जिससे उसे कुछ भी सुहाता नहीं और समस्त शरीर की कौतिल के आगे तो सोना भी तुच्छ है इसलिए वह जाकर आग में गिर पड़ा। इस तरह प्रतीय अलंकार के माध्यम से सौन्दर्य वर्णित हुआ है -

या दृग आगे कछु मृग बापुरे जंगल तैं बस्ती में न आवैं ।  
 पंकज मीन परे पय मांकि विहाल से ताल में आं छिपावैं ॥  
 राधे को आनन देषि के चंद भयो मतिमंद कछु न सोहावैं ॥  
 काय के आगे कछु कर हाट कछाट परयो तन आगि में तावैं ॥<sup>1</sup>

यहाँ पर सभी तत्व जाकर लज्जा के कारण छिप गये हैं। नायिका के अघर व मुख का जब निर्माण कर दिया गया है तो विधाता ने व्यर्थ ही अमृत और चन्द्र का निर्माण किया।<sup>2</sup> नायिका का मुख घूँघट की ओट में इसी प्रकार सुशोभित है मानो शरद पूर्णिमा का चन्द्रमा बाकलों की ओट में हो।<sup>3</sup> कृष्ण और गोपियों रास खेल रहे हैं और इसी प्रकार सुशोभित हो रहे हैं जिस प्रकार चंद्रमा तारों के साथ सुशोभित होता है। नायिका के होठों पर दंतद्वय का निशान है जिसे देखकर सखी उसका

1- ल. ज. सिं० अ. ४९

2- अमृत जुवती के अघर सुम मुषाचंद सुभाष ।  
 वृथा जु श्रम विधि क्यों कियो अमृत चन्द्र उपनाय ॥ वही- कन्द 33

3- घूँघट मुख छलु करौ, कहुँ मुसनि को कंद ।  
 सरद मनु घन में सही प्रगट्यो पूरन चंद ॥ वही- चतुर्दश तरंग, कन्द सं० 153

4- हेरो सी तुम हेरो आवैं गोपाल रंग में ।  
 ऐसे गोपी के गन घेरो जैसे परिवेषा में चंदा ॥

वही - पंचदश तरंग, कन्द सं० 478



आकर्षित हो जाता है और उनके प्रति अपने विचार प्रकाश कर ही बैठता है। काव्य में भी घोर शृंगारिक कवि भी जब (हल) इस दृष्टिकोण से सोचता है तब उसके मुख से उपदेश जैसे वाक्य निकल पड़ते हैं। कवि अपनी बात कहने के लिए प्रकृति का भी पर्याप्त सहारा लेता है। प्रकृति के माध्यम से बहुत सी अभिव्यक्ति कर सकता है। मानव ने प्रकृति के कण-कण में आदर्श को देखा है, पृथ्वी की दामा और सहिष्णुता से वह मुग्ध रह गया है, कल-कल शब्द करते हुए निर्धारों की गतिशीलता में उसे जीवन का सन्देश मिलता है, वृक्षाँ और पौधों की उदारता प्रेम में जीवन की सफलता का रहस्य मिला है। फलतः वह सबको अपना गुरु मान बैठा है।<sup>1</sup> कुँवरकुशल ने अपने काव्य में कुछ उपदेशात्मक छन्द प्रस्तुत किए हैं जिनके लिए प्रकृति का सहारा लिया गया है। उत्तम रत्न सदैव ऊँचे स्थान पर ही रहता है। जब पूर्ण रससिद्ध स्नेह से सींचा जाता है तभी गुण हपी दीपक प्रकाशित होता है अर्थात् जिस गुण संपन्न व्यक्ति भी सदैव सुशोभित होता है उसे सभी द्वारा सत्कार सम्मान मिलता है किसी के गुणों की परख स्नेह द्वारा ही की जा सकती है -

ठहरत ऊँची ठौर पेँ उत्तम रतन सु येह ।

गुन परकास दीप कवि सींचे सरस सनेह ॥<sup>2</sup>

दूसरा उदाहरण द्रष्टव्य है इस संसार रूपी सरोवर में जहाँ जल और कमल न होकर केवल धूल ही होती है वहाँ पर चतुर हंस मुक्ता भी ढूँढ़ लिया करते हैं -

जहाँ जग सर जल कमल नहिं कछु रिति उडत जु क्षार ।

चतुर हंस वाहत कियो तहाँ मुक्ता आहार ॥

1- सुमित्रानन्दन पंत-गोपालदास नीरज सुधा सक्सेना, पृ0 93

2- ल. ज. सि० <sup>प्र.स.</sup> छन्द -92

3- वही - छन्द सं० 84

यों ~~सो~~ देखा जाय तो यह कथन विपरीत प्रतीत होता है परन्तु अप्रस्तुत अर्थ इस संसार की अज्ञानता को द्योतित करने वाला है। जल और कमल इस संसार में मिलने वाले दार्णिक, प्रेमिक तथा झूठे धन वैभव से प्राप्त सुख के प्रतीक हैं और दारु संसार के वास्तविक सुख का। सामान्य लोग सांसारिक सुखों के पीछे दौड़ने वाले होते हैं - ~~उन्हें~~ उनके लिए वे ही सब कुछ होते हैं परन्तु संत लोग इस दारु में से भी जिसे सामान्य व्यक्ति तत् व्यर्थ समझकर त्याग देता है, मोती ढूँढ़ लिया करते हैं। अर्थात् कष्टमय तप और जप का मार्ग अपनाकर अन्त में ईश्वर प्राप्ति के सुख का आनन्दालाभ उठाते हैं।

यौवन को सरोवर का प्रतीक मानकर कहा है कि एक दिन तो पनिहारिनी बहुत सा बर्तन लेकर पनघट पर जल भर रही थी, लेकिन अब <sup>उसी</sup> वही सरोवर के सूख जाने पर कुछ बूँदें ही शेष रह गई हैं -

मानन बहु भरती हुती पनघट पै पनिहारि ।  
सरोवर ते अब सूकि गौ बूँदनि रहौ जु बारि ॥<sup>1</sup>

अर्थात् स्त्री एक दिन अपने दार्णिक यौवन पर बहुत ही अभिमान कर रही थी और दृठला रही थी आज वही सरोवर रूपी यौवन सूख गया है जहाँ पर पिछले सौन्दर्य के अशेष मात्र ही रह गये हैं। अतः इस यौवन पर कभी भी घमण्ड नहीं करना चाहिये। एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

कलानाथ लणि साँफ काँ पोहेनि रूप परसन्न ।  
पायाँ सुषा मन जह परम तह प्रफुलित अवतन्न ॥<sup>2</sup>

1- ल. ज. सिं० <sup>प्र.स.</sup> कृन्द सं० 85

2- वही - कृन्द सं० 86

अर्थात् संख्या होते ही चन्द्रमा के निकलने पर कुमुद्विनी प्रसन्न हो जाती है। जहाँ पर मन सुख प्राप्त करता है उसका परिणाम शरीर पर भी दृष्टिगत होने लगता है। अर्थात् अपनी मनोवांछित वस्तु प्राप्त करने पर जब मन प्रसन्न हो जाता है तब शरीर भी पुलकित हो उठता है जिस प्रकार कुमुद्विनी चन्द्रमा को देखते ही खिल उठती है। दूसरा अर्थ यह है कि आत्मा अथवा भक्त जब परमात्मा अथवा भावान (सगुण रूप में) को देखता है तो उसका मन तो प्रसन्न हो ही जाता है, साथ-साथ शरीर भी रोमांचित हो उठता है और नेत्रों में भी प्रेमाश्रु उमड़ पड़ते हैं।

राजा के रूप चित्रण में प्राकृतिक उपमाओं का प्रयोग :

कुँवरकुशल ने अपने ग्रन्थ 'लखपति जससिन्धु' में प्रकृति-चित्रण को दो रूपों में किया है - एक नायक-नायिका की भावनाओं के परिप्रेक्ष्य में और दूसरा राजा से सम्बंधित। कुँवरकुशल ने राजा के प्रताप, राजा का यश, राजा का रूप-वर्णन इत्यादि का वर्णन करने के लिए भी प्रकृति का प्रयोग किया है। यहाँ भी प्रकृति का उद्दीपन रूप में ही चित्रण किया गया है। जिस प्रकार नायक और नायिका के मुख को चन्द्रमा तुल्य माना है उसी प्रकार राजा का मुख भी चन्द्रमा के समान सुशोभित होता है -

जाति बड़ी फलके रस संयुत प्रेम भरी पलके ललके रूषा ।  
 दंत की पंति दिपति अंत ही अमृत बीज पे हीरे लौ तुषा ।  
 बोल सुधा भर तोल बिलद अडोल करे कुँअरेस महा सुषा ।  
 आली नंही न सुधाघर चंद ये सचौ सुधाघर राउ कौ श्री मुषा ॥<sup>1</sup>

राजा के नेत्रों को देखकर कवि के मन में अनेक प्रकारके संशय उत्पन्न होते हैं; उनको देखकर कभी इन्द्र का आभास होता है तो कभी सूर्य का कभी काम का तो कभी कुबेर और चन्द्र तथा सुमेरु पर्वत का परन्तु उनके समान गुण न होने के कारण वास्तव में वे नहीं होते -

कै कियोँ इन्द्र धरे न धरा पग सूर कियोँ नल है थिरतह ।  
 काम कियोँ उनके नहि आँ कुबेर कियोँ बिारयोँ बपु माह ।  
 चंद कियोँ कहुँ लखन नाँहि सुमेर कियोँ जडता जग पाह ।  
 श्री लक्ष्मपति महाराज को द्रिा देषत संसय होहि सदाह ॥ <sup>1</sup>

इसी राजा के युद्ध का वर्णन वर्णां श्रु के माध्यम से प्रस्तुत किया है। आकाश में छाये हुए रंग-बिरंगे बादल नहीं हैं वरन् वे तो राजा के सैनिकों द्वारा बनाये गये तम्बू हैं, बादलों का गर्जन मानो युद्ध के मैदान में बनाये जाने वाली तुरही (नाँबत) की आवाज है, बूँदें मानो बाण हैं, मोर और फीगुरों की आवाज गुणिकियों द्वारा बजाई जानेवाली तुरही है और आने वाले मेघ मानो लक्ष्मपति महाराज के सैनिकों के ढल ही प्रतीत होते हैं। <sup>2</sup> राजा का प्रताप सुमेरु पर्वत की तरह वृद्ध है। <sup>3</sup> राजा लक्ष्मपति जी चन्दन वृक्षा के समान हैं जिस-प्रकार शत्रु और वैश्यालु व्यक्ति रूपी सर्प अपना जहर उगलते रहते हैं तथापि लक्ष्मपति जी उन्हें सीतलता अर्थात् उनकी भलाई ही करते हैं। <sup>4</sup> जब लक्ष्मपति जी हाथ में तलवार लेते हैं

1- ल. न. सिं०, कन्द सं० 52

2- नाँहिन ये बदरा रंग रंग के तंबू निशान दिषावत है ।  
 नाँहिन आँज ये नाँबत धोरन बूँदिन बान चलावत है ।  
 नाँहिन मोर फीगोर के सोर ये तुर गुनीनि बजावत है ।  
 नाँहिन ये मक्ष्मा अलि मानिलक्ष्मपति के ढल आवत है । वही - कन्द 82

3- उद्धत प्रताप जाको अग्नि सुदृढ सुमेरु सरूप हुआ । वही - पुं० कन्द-2

4- तौ सम चंदन द्रुम तू ही है गुनत्रिधि जग जस गावै ।  
 सर्प जहर तोपरि सींचत है तूं सीतलता धावै ॥

तब काल का स्वरूप ही धारण कर लेते हैं, आकाश में उमड़ने वाली धारयें धनुष की डोरी ही की तरह दिखलाई पड़ती हैं, आवाज भी शूत्रों की ही लगती है, और अनिरुद्ध का रूप धारण कर बड़ा ही त्रास देने वाले प्रतीत होते हैं इतनी वशा होती है कि एक दाण को भी ओख नहीं खोली जा सकती, लक्षपति जी की शक्ति रूपी जलधारा के प्रवाहित होने पर शत्रुओं के प्रताप की अग्नि एक दाण में ही बुझ जाती है -

काल कखाल महा अंबु वाह को प्रकाशि

उमड़ी घटा की कूटा चाप को चढायो है ।

बरबंड बीरहंक गाज की अजाजि साजि

उग अनिरुद्ध असो वास दरसायो है ।

घङ्करी एक आंणि न उघारो नमी फराफरी

धुधुरित आसमान भानि तम क्वायो है ।

देवलषाधीर जहां धारा जल के प्रवाह

अरि को प्रताप वहिन फल में बुझायो है ॥<sup>1</sup>

राजा लक्षपति अत्यन्त ही उदार वृत्ति वाले हैं, दानी हैं। उनकी इस दानप्रियता के कारण सन्देह होने लाता है कि ये काम के कलश हैं अथवा कल्पवृक्षा हैं अथवा ब्रह्मा के हाथ हैं अथवा चिन्तामणि रत्न हैं।<sup>2</sup> लक्षपति जी जलधर के समान हैं जिस प्रकार मेह बरस कर पृथ्वी को सोने से पूर्ण कर देते हैं उसी प्रकार

1- ल. ज. सिं०<sup>उ.त.</sup> अ. हन्द सं० 77

2- काम कुंभ के कल्पतरु के विधि कीये बाथ ।  
के चिन्तामनि कुंभ कवि हैं लक्षपति के हाथ ।

लक्षपति जी भी दान देकर गरीबों के कष्टों का निवारण कर देते हैं ।<sup>1</sup> उनकी इस दानप्रियता के कारण कुबेर भी चैन नहीं ले पाता और रत्नाकर डर के कारण काँपता रहता है और सुमेरु पर्वत से तक नहीं पाता ।<sup>2</sup> जिस प्रकार सूर्य के उदित होने पर पर्वत तपने लगते हैं उसी प्रकार लक्षपति राजा के प्रताप के कारण भुज भी तपने लगा है अर्थात् भुज में राजा का प्रताप दिखाई पड़ रहा है ।<sup>3</sup> यश का रंग श्वेत माना गया है । राजा लक्षपति जी के यश की श्वेतता से ही सभी प्रसिद्ध श्वेत वस्तुओं ने श्वेतता ग्रहण की है ।<sup>4</sup> राजा लक्षपति जब हाथी पर चढ़ते हैं तब भी चारों ओर की वस्तुएँ प्रभावित हो जाती हैं । हाथी के मद से नदी जाले भर जाते हैं, उनकी घमघमाहट से देवता, व्यक्ति तथा दिशाओं के सपनों के फण्ट भी भुंक जाते हैं अर्थात् वे डर जाते हैं और घोड़े के खुरों से उड़ने वाली धूल के कारण सूर्य का रथ भी छिप जाता है अर्थात् धूल इतनी अत्यधिक मात्रा में छा जाती है कि सूर्य भी दृष्टिगत नहीं हो पाता -

जब लक्षपति जदुपति कटक चढत तब सुभट विकट थट सुघट ल्ये ।

गज मदहु गरजन घुघुघु-गल ल ल नद भर जल थल जलद छ्ये ।

घम घम घम घम घर घु जुत छसकि दहवि सुर नर विषाधर फननि न्ये ।

ह्य षुर नर पय लगि रज उडि विव म्ग दिन मनि रथ षथ लुकि मये ॥<sup>5</sup>

- 
- 1- जलधर सम यदुकुल यो कक्षपति लषाकुमार ।  
कुंअर सबे वसुधा कियो सुबरन को आसार ॥ वही- <sup>उ.त.</sup> कन्द सं० 87
- 2- देसल सुअ को दान सुनि कल पावै न कुबेर ।  
कांपत रतनाकर कुंअर सोवत नाहिं सुमेर ॥ वही- कन्द सं० 89
- 3- तरनि उदय गिर तपत जिम, तिमि भुज लषापति भूप ।  
ल.ज. सिं० चतुर्विंश तरंग, कन्द सं० 161
- 4- सुरधर सुरगज सुर सरित हिम गिर मुक्त निहारि ।  
रबि ससि लषिापति कुंअर कहि सुम तुम जस अुसारि ॥  
वही- कन्द सं० 164
- 5- वही - कन्द सं० 296

महाराजा लखपति अन्य राजाओं के बीच उसी प्रकार महत्वपूर्ण है जिस प्रकार अन्य रत्नों के बीच पारस मणि और उसी प्रकार प्रकाशित हो रहे हैं जिस प्रकार जगनुओं के बीच चन्द्रमा ।<sup>1</sup> जिस प्रकार आकाश और तारों के मध्य चन्द्रमा सुशोभित होता है उसी प्रकार राजा लखपति जी भी कीर्ति के साथ सुशोभित होते हैं ।<sup>2</sup>

अतः हम देख सकते हैं कि लखपति जससिन्धु में आलम्बन रूप के अतिरिक्त प्रकृति का सभी रूपों में चित्रण किया गया है । यहाँ पर एक ओर प्रकृति नायक-नायिका के सुख-दुख में समभाव से सम्मिलित होती है वही, नायक-नायिका के रूप-सौन्दर्य के समक्ष तुच्छ सी जान पड़ती है और वही उपदेशिका बनकर भी हमारे समक्ष आती है । अन्ततः इन सबके अतिरिक्त राजा लखपति जी के रूप चित्रण व युद्ध वर्णन में भी सहायक बनी है ।

### भाषा :

मानव जीवन में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है । भाषा ही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से एक दूसरे की बात को आसानी से समझा तथा ग्रहण किया जा सकता है । भाषा के अभाव में यह सब सम्भव नहीं । मन के

- 1- श्री महाराज लखपति पारस पाय के और नगिना बिसारे ।  
संभुषा चांद, सदा कुवरेस तौ वाक कहा करे भीर बिचारे ॥

ल. ज. सि० कृन्द-4 646

- 2- उडुगन संग अकास ससि कांतिमान कुंजरेस ।  
सुभा संग अकीरति सहित निरथ्यो लषा नरेस ॥

वही - <sup>प्र.त.</sup>कृन्द सं० 116

गुह्यतम तथा सूक्ष्मात्सूक्ष्म भावों को भी भाषा के माध्यम से दूसरों द्वारा सरलतापूर्वक हृद्यंगम किये जा सकते हैं और किये जाते रहे हैं। काव्य में विचारों और भावों की अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही सम्भव है। भाषा के सबल कन्धों पर बैठ कर ही विचार अपनी यात्रा को सफलीभूत बना सकते हैं। जिस प्रकार सामान्य व्यक्ति भाषा का सहारा लेता है उसी प्रकार कवि भी भाषा की ज़रूरत महसूस करता है। मनुष्य जाण दो जाण इ शारों से भी काम चला सकता है लेकिन कवि भाषा के द्वारा ही अपने भावों और विचारों को हम तक पहुँचा सकता है। इसके लिए भाषा भी उसी स्तर की होनी चाहिए और होती है। काव्य में प्रयुक्त भाषा अपनी अलग कृटा और सुन्दरता लिये हूँ रहती है। सामान्य से सामान्य शब्द में भी कवि वह अर्थवृत्ता भर देता है कि पाठक चमत्कृत हूँ बिना नहीं रह सकता, क्योंकि कवि को अपनी बात को कम से कम शब्दों में तथा प्रभावान्विति-गुण-सम्पन्न बनाकर कहनी होती है। सामान्यतः जिस शब्द को व्यर्थ समझा जाता है, कवि के कुशल हाथों में जाकर एक नई अर्थवृत्ता ग्रहण कर लेता है। 'क्योंकि काव्य में प्रयुक्त शब्द किसी निश्चित अर्थ की अभिव्यक्ति के द्वारा हमारी भावनाओं को फंकृत ही नहीं करते प्रत्युत अपने में अन्तर्निहित प्रसंग-गर्भित लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ अथवा ध्वन्यार्थ के द्वारा एक वातावरण की सृष्टि करके उसका सम्प्रेषण सहृद्य तक करते हैं।<sup>1</sup> व्यवहार में शब्द के अभिधा स्वरूप से ही काम चला लिया जाता है परन्तु काव्य में अभिधा का स्वरूप कवि के सशक्त विचारों का भार वहन करने में सर्वथा असमर्थ रहता है इसलिए कभी लक्षणा, कभी व्यंजना का सहारा लेना पड़ता है साथ ही अनेक प्रकार के अन्य भाषा सम्बंधी प्रयोग करने पड़ते हैं ताकि दूसरों पर प्रभाव डाला जा सके। साथ ही इस ढंग से भी कहा जाये कि पाठक द्वारा शीघ्र हृद्यंगम किया जा सके। इसलिए कवि के

1- ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना-शिल्प-

कार्य को निराला जी बड़ा ही सूक्ष्म कार्य मानते हुए कहते हैं कि - 'जिस प्रकार बड़ी चुवाने से पहले उड़द की पीठी को मथ कर हलका तथा कोमल कर लेना पड़ता है उसी प्रकार कविता के स्वरूप में भावों के ढाँचों में ढालने के पूर्व भाषा को भी हृदय के ताप में गला कर कोमल, करुणा, सरस, प्राञ्जल कर लेना पड़ता है।'<sup>1</sup>

### ब्रजभाषा की महत्ता :

रीतिकालीन कवियों की प्रिय भाषा ब्रजभाषा रही है। चाहे वह ब्रज क्षेत्र रहा हो अथवा पंजाब या गुजरात क्षेत्र सर्वत्र काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही है। भक्तिकालीन कवियों से प्रारम्भ होकर फलती-फूलती रीतिकाल में आकर अपने समस्त सौंदर्य के साथ अतृप्त हुई। यह ब्रजभाषा एकदम से नहीं वरन् अनेक कवियों द्वारा परिमार्जित की जाती रही है - 'सूर ने उसकी निखिल शक्तियों का विकास कर उसको अत्यन्त व्यापक बना दिया था। हितहरिवंश और नंददास ने उसकी पद-योजना को संस्कृत की शब्द-मण्डियों से सजाया था, बिहारी ने उसके समास गुण को पूर्ण विकास पर पहुँचाया था और मतिराम ने उसको सर्वथा स्वच्छ और परिष्कृत रूप दिया था।'<sup>2</sup> डॉ० किशोरीलाल भी ब्रजभाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं कि 'भक्ति-वर्गमय को यदि ब्रजभाषा का प्रयोग काल कहा जाय तो रीति-वर्गमय को उसका साहित्यिक उत्कर्ष काल कहा जा सकता है क्योंकि भक्ति काव्य में भाषा का अधिक लावण्यमय एवं अल्प माधुर्य सम्मिलित रूप कलात्मक प्रौढ़ि के अभाव में प्रायः लज्जित नहीं होता

1- रीति कवियों की मौलिक देन-डॉ० किशोरीलाल, पृ० 476 से उद्धृत।

2- हिन्दी का समस्या पूर्ति काव्य- डॉ० व्याशंकर शुक्ल, पृ० 255 से उद्धृत।

पर रीति काव्य भाषा के सख्न प्रवाह, लोच्य, नाद सौन्दर्य, लाडाणिक प्रयोग, अपार शब्द, मण्डार आदि सभी दृष्टियों से पूर्णतया सम्पन्न है इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं किया जा सकता है।<sup>1</sup> इतना ही नहीं इस ब्रजभाषा को सुरवाणी के समानान्तर पद पर प्रतिष्ठित किया गया।<sup>2</sup> ब्रजभाषा में जितना माधुर्य और जितनी तरलता है उतनी किसी अन्य भाषा में नहीं। इस सम्बंध में डॉ० व्याशंकर शुक्ल का कथन द्रष्टव्य है - 'शब्द-माधुर्य भाषा का एक विशेष गुण है। जिस भाषा में मधुर शब्दों की जितनी प्रचुरता होगी, वह उतनी ही उत्कृष्ट समझी जायेगी। अच्के भाव किसी भाषा में अच्के ही लगे, पर यदि वे मधुर भाषा में हों तो और भी हृद्यग्राही हो जायेंगे। ब्रजभाषा ऐसी ही श्रुति-माधुर्य-पूर्ण भाषा है जिसके लिए 'संकरी गली में जाय काँकरी गड़तु है' वाली उक्ति प्रसिद्ध है।<sup>3</sup> प्रत्येक भाषा की शब्द-सम्पत्ति मात्र उसकी निजी ही नहीं होती वरन् उसमें अन्य भाषाओं के शब्द भी समय-समय पर आकर मिलते हैं और यह पुनः पुनः कार्य कवियों द्वारा किया जाता है। हिन्दीतर कवि जब हिन्दी (ब्रजभाषा) रचना करेंगे तो उनकी अपनी मातृभाषा के शब्दों का समावेश स्वभावतः ही हो जाता है तथा अपने आस-पास के प्रदेशों से स्वयं भी अप्रभावित नहीं रह पाती। इसलिये हिन्दी भाषा भी जब कविता करेंगे तब अन्य भाषाओं के शब्दों का समाहार कर लेते हैं। इससे भाषा में शाब्दिक विविधता देखने को मिलती है। ब्रजभाषा भी इसी कारण अनेक भाषाओं का सम्मिलित रूप है जैसा कि भिखारीदास ने स्पष्ट की स्वीकार किया है।<sup>4</sup>

1- रीति कवियों की मौलिक देन- डॉ० किशोरीलाल, पृ० 476

2- ब्रजभाषा भाषात सकल सुर वाणी समतूल ।

ताहि बखानत सकल कवि जानि महारस मूल ॥ वही, पृ० 474 से उद्धृत ।

3- हिन्दी का समस्यापूर्ति काव्य-डॉ० व्याशंकर शुक्ल, पृ० 256

4- भाषा ब्रजभाषा हचिर कहै सुकवि सब कोह ।

मिले संस्कृत पारसिहु पै अति प्रगट जु होहै ।

ब्रज मागधी मिले अमर नाग जमन भाषानि ।

सख्न पारसीहु मिले षटविधि कवित बखानि ।

लखपतिससिन्धु के जैसा कुँवरकुशल ने भी ब्रजभाषा में ही उक्त ग्रंथ की रचना की है। सुदूर पश्चिमी गुजरात प्रान्त में रहते हुए भी ब्रजभाषा में काव्य-रचना करते रहे क्योंकि एक तो उस समय की प्रचलित भाषा थी। दूसरे अपने अश्रयदाता के आग्रह पर भी रचना ब्रजभाषा में कर सके। महाराव लखपतिसिंह ने ब्रजभाषा के विकास के लिए अपूर्व योगदान दिया। एक प्रकार से प्रेरणा के स्रोत बने। इसी कारण कुँवरकुशल ने भी ब्रजभाषा को ही अपने काव्य का माध्यम बनाया। इसके अतिरिक्त कुँवरकुशल स्वयं हिन्दी प्रदेश से आये थे और उस प्रदेश की काव्य-भाषा से परिचित थे। <sup>अतः</sup> ब्रजभाषा में ही काव्य-रचना की।

अब हम लखपतिससिन्धु <sup>की भाषा</sup> पर विचार करेंगे - अजभाषा में अनुनासिक शब्दावली की आत्पन्निकता दृष्टिगत होती है। कुँवरकुशल ने अपने ग्रन्थ में इस गुण का समावेश किया है जिससे एक प्रकार की गति वाक्य लयात्मकता आ गई है। उदाहरणतः —  
 भुम पूर पाप्रपाप उखरुअ मनआयि

अममआं आं आनंद के कंद सरसात है ।<sup>1</sup>

नैननि मूदि रहौ जबहीं तबहीं हरि हेत हैं हीय मैं आवैं ॥

ओर नहीं सुधि या तन मैं अलि के गन मो मन नाहिं सुहावैं ॥

फेरि कहुँ वे मिलैं मनमोहन यौ कहि आपुनौ भाव बनावैं ॥

सांची सहेली जो तू होय मेरी तौ काहि सुजांन को आंनि मिलावैं ॥<sup>2</sup>

किसी भी कवि की भाषा को परखना हो तो उसे व्याकरणिक दृष्टि से भी देखना चाहिये, क्योंकि भाषा का गठन व्याकरणिक स्तर पर ही होता है। भाषा का विकास तथा उसकी व्यवस्था व्याकरण के द्वारा ही सम्भव है। यहाँ हम लखपति जससिन्धु की भाषा में प्रयुक्त सर्वनाम और क्रियाओं के रूप पर विचार करेंगे।

-----  
 छ.त.  
 1- ल. ज. सिं०, अ. कुन्द सं० ४

2- वही - कुन्द सं० ४०

सर्वनाम :

एक वचन में उत्तम पुरुष के रूप -

मेरे- जैसी चाह मेरे चित तैसी चाह कीयें तुम  
उरदाह टारिबे को हरबरे धाये हों ।<sup>1</sup>

मोसो- सुषुद समीर कर स्वेद को सुकाहु पिय  
माघ की निशा में मोसो मया करि आये हों ॥<sup>2</sup>

बहुवचन में उत्तम पुरुष का रूप -

हमको- बन बन बनें बजावों बनि बनि सो हमको संताप ॥<sup>3</sup>

एक वचन में मध्यम पुरुष के रूप -

तो, तू- तो सम चंदन द्रुम तूहीं हैं गुननिधि जग जस गावें ।  
साँप जहर तो परि सिचत है तू सी तलता छ्वावें ॥<sup>4</sup>

यहाँ पर दोनों मूलरूप तथा विकृत रूप मिलते हैं ।

तू, तेरो- याचक तू जिनि सौच करे इनि औसर तेरो में दुःख बहाउं ॥<sup>5</sup>

1- ल. ज. सिं० च. त. कन्द सं० 7

2- वही - कन्द सं० 7

3- वही - कन्द सं० 22

4- वही - च. त. कन्द सं० 11

5- वही - ष. त. कन्द सं० 42

बहुवचन में मध्यम पुरुष का पुल्लिंग रूप -

तुम- क्वि आरे नैननि क्व आोपिन पिय तुम् गौन ।<sup>1</sup>

क्रिया :

ब्रजभाषा की वर्तमानकालिक क्रिया करत, रहत इत्यादि प्रकार की होती है कहीं-कहीं पर करतु-रहतु का रूप भी मिलता है। यही रूप लखपति-जससिन्धु में प्रयुक्त हुआ है।

धरतु घन लोह सारनि लुहार।तरवारि षंजर बगतर कटार ।<sup>2</sup>

बबतु है मांडि बेजा विधान।पट बुनिया बस्त्र सपोतमान ॥<sup>3</sup>

रमतु है मल्ल रामति सुमहि।इ हिं मांति मल्ल आणाढ़ आह ।।<sup>4</sup>

भरतु है कौतिक परिल पट्ट।चरखी निदार परिचलत चट्ट ॥<sup>5</sup>

इसके अतिरिक्त करिबौ, बुनिबौ जैसी क्रियायें भी प्रयुक्त हुई हैं -

लणि रस करिबौ लोह कौ।तोपनि कौ तिमि सोध ।<sup>6</sup>

बुनिबौ सरस बनात कौ।बहुरि बनाती रंग ।<sup>7</sup>

- 
- 1- वही -पुस्तक-सं० 25  
 2- वही - द्वि. त. सन्द् सं० 107  
 3- वही - सन्द् सं० 109  
 4- वही - द्वि. त. सन्द् सं० 122  
 5- वही - सन्द् सं० 145  
 6- वही - सन्द् सं० 129  
 7- वही - सन्द् सं० 130

एक अन्य उदाहरण में एक साथ कई क्रियाओं का प्रयोग किया गया है -

चाहियोँ \* ओँ सुनिबोँ रहियोँ बोलियोँ ओँ गहँ सुधि या तन मै ।<sup>1</sup>

यहाँ पर एक साथ अनेक क्रियाओं के प्रयोग से नायिका की पीड़ा, व्याकुलता और तड़प की अभिव्यक्ति होती है।

भूतकाल :

कुँवरकुशल ने भूतकाल की कीनों और कियोँ दोनों रूपों का प्रयोग किया है -

मालिम कोँ कीनों हुकम भलपन गुन मंडार ।<sup>2</sup>

कियोँ दूरि कलि कलुषा तम बडे तपोबल बीरू ।<sup>3</sup>

भविष्यकाल :

गौन करुँगे पिया परसौँ यह बात सुनी है सखी गन मै ।<sup>4</sup>

कवि का शब्द-मण्डार अंततः सीमित ही होता है किन्तु भावों की कोई सीमा नहीं होती। अतः कवि का यह कर्तव्य होता है कि अपनी बात को थोड़े से शब्दों में और प्रभावशाली ढंग से कहे। इसलिए वह इस प्रकार की शब्द-योजना करता है कि पाठक अभिभूत हुए बिना नहीं रह पाता। उदाहरण के लिए प्रस्तुत छन्द द्रष्टव्य है, जिसमें कुँवरकुशल ने ध्वन्यात्मक तथा पराष्ण शब्दावली की

- 
- 1- वही- षा. त. छन्द सं० 23
  - 2- वही- डि. त. छन्द सं० 126
  - 3- वही- तु. त. छन्द सं० 10
  - 4- वही - षा. त. छन्द सं० 23

पुनरावृत्तिके मुद्रका दृश्य उपस्थित कर दिया है ।

जब लष्पपति ज्ज जदुपति, कटक चढ़तु  
 तब, सुभट बिकट थट, सुघट लये ।  
 गज मद उग रजन, घु घु घु घु ग ल ल ल,  
 नद भर जल थल, जलद ह्ये ॥  
 घम घम घम घम घर, घु जुत घसकि दहवि,  
 सुर नर विष्णधर, फननि न्ये ।  
 ह्य षुर नर पय लगि, रज उडि द्विमा,  
 दिन मनि रथ पथ, लुक्ति भये ॥<sup>1</sup>

इस कुशल शाब्दिक योजना के कारण कथन में गत्यात्मकता, प्रवाह्यता का गुण आ गया है, जिससे एक प्रकार की चारूता आकर समाविष्ट हो गई है -

गिरधारी गुडसिन गंगा पति गोपी पति गोमती के पति हूँ कौ गह्ये ।  
 मोहन मुरारि माधौ मुंज के समुष्टि मर्द महि मानि ध्यानधान धीर  
 चित ध्याह्ये ।

राध्व रमापति औ रावनारि राज राज रासपति रसपति पूरे भाग पाह्ये ॥  
 बरदाह बलि भाह वामन वराह वीर बनमाली स्याम सेयबै ते सुषा पाह्ये ॥<sup>2</sup>

इसी प्रकार कवि एक कन्द में ही एक ही शब्द की एक से अधिक बार आवृत्ति करके भी कथन के सौन्दर्य में वृद्धि कर देता है -

1- ल. ज. सिं० चतुर्दश तरंग, कन्द सं० 296

2- वही - त्र. त. कन्द सं० 197

कुं कुं बेलि पुंज फूले फूले फूल गंज

मंजु मंजु भौरनि की गुंज कानी आह है ।<sup>1</sup>

इसी तरह एक अन्य स्थान पर भी शाब्दिक पुनरावृत्ति से वर्णन में चित्रोपमता का गुण आ गया है। अपने वर्णन के माध्यम से कुँवरकुशल ने उक्त दृश्य ही ला उपस्थित किया है -

कंन के आसननि कंवन सिंघासननि कंवन सुबासननि कटै नहि दौ परी ।

जारी और करोखा जहाँ जरि जरि करकरे करर करर करर करर कर  
भौपरी ।

छाती छाजे छतरी सु छूटि छींट छींट छार छोह छाती में विपत्ति रावन  
कौ यौ परी ।

सीता के सराय राम राजा के प्रताप घाय लंका के अवास जरे घास की सी  
भौपरी ॥<sup>2</sup>

इस एक उदाहरण में प्रथम पंक्ति में कंवन शब्द का तीन प्रकार प्रयोग किया गया है जिससे स्वर्णपुरी लंका का दृश्य उपस्थित होता है, द्वितीय पंक्ति में जरि जरि तथा करर करर जैसे शब्दों की पुनरावृत्ति के द्वारा लंका के त्वरितता के साथ जलने की ओर संकेत किया गया है। इतनी ही नहीं समोच्चरित शब्दों के माध्यम से भी एक प्रकार की छटा की विनियोजना कुँवरकुशल ने की है। जैसे -

मिलै षिलै रंग छिलै आं आं में उमंग अंक भरै आपस में क यौ हू न अघात है ।<sup>3</sup>

1- वही-<sup>पं.त.</sup>कन्द सं० 19

2- वही-<sup>प्र.त.</sup>कन्द सं० 113

3- वही- षाष्ठ तरंग, कन्द सं० 9

सविता निसँ कमलँ बिसँ तम दूर नसँ जग जीव हँ ।<sup>1</sup>

यहाँ पर मिलँ णिलँ छिलँ तथा निसँ, बिसँ, नसँ, हँ जैसे समोच्चरित शब्दों का प्रयोग करके चमत्कार की सृष्टि की है ।

सन्धि विग्रह का भी कवि ने सहारा लिया है -

तिहि संभार के भार दान सुबरन सुठार दिय ।<sup>2</sup>

प्रत्येक भाषा अपनी विशेषताओं से सम्पन्न होने के अतिरिक्त अपने में अन्य भाषाओं अथवा बोलियों के शब्दों को भी समय-समय पर समाविष्ट करती है । क्योंकि कवि अपने काव्य की सर्जना करते समय इस बात का ध्यान नहीं रखता कि दूसरी भाषाओं के शब्द आने ही न पायें वरन् एक उदारवादी नीति अपनाते हुए वह काव्य-सौन्दर्य के लिए अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करते समय हिवक्ता नहीं । यों भी हम दैनिक जीवन में भी केवल अपनी मातृभाषा के ही नहीं अन्य भाषाओं के शब्दों का भी निःसंकोच प्रयोग करते हैं । यह मानवीय प्रवृत्ति है कि वह प्रत्येक का आदान-प्रदान करता रहता है । भाषा के सम्बंध में भी यही सत्य है । ब्रजभाषा भी इसी गुण से सम्पन्न है । इसमें भी अनेक भाषाओं के शब्दों ने आकर स्थान प्राप्त कर लिया है । कुँवरकुशल ने काव्य-रचना करते समय संकुचित दृष्टि न रखते हुए विभिन्न शब्दों को अपना लिया है । इसके काव्य में निम्नलिखित भाषाओं के शब्द मिलते हैं -

संस्कृत :

कुँवरकुशल ने संस्कृत के शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है । इसमें संस्कृत

1- वही- छन्द सं० 720

2- वही- प्र. त. छन्द सं० 3

के तत्सम और तद्भव दोनों रूपों को ग्रहण किया है। संस्कृत के तत्सम शब्दों में नृत्य, हृद्य, पंकज, उदधि, संग्राम, पवन दृष्टा, मृग इत्यादि हैं -

करत नृत्य कैलास पै भस्म भुयंगम आं ।<sup>1</sup>  
 मधुर हृद्य पंकज लखे मन उलह संत बिषोषि ।<sup>2</sup>  
 उदधि हलत गिरवर मिलत रथि तर बिरथ थान ।<sup>3</sup>  
 छाछ बाजे जे के बाजा सांसा संग्राम में सूरौ ।<sup>4</sup>  
 सीरो पवन सुहावै आये पीउ जवै घर मेरे ।<sup>5</sup>  
 या दृष्टा आगे कछू मृग बापुरे जंगल तैं बसती मैं न आवै ।<sup>6</sup>

कहीं प्रण कहीरू पर पूरी तरह संस्कृत की तरह ही छन्द की रचना भी की है -

मानै सुर सहित कमला सहित मुनि मन मान सहै ।  
 वहि के तन बावन दाब्यौ दानव कंठ कटे अरिक्सं ।  
 रुचि राधा रमन बाधा हरन कुंद कुसम मुख हासं ॥  
 जमुना पुहुम कंठ सरस सुकंठ रंजत गोपी रासं ॥<sup>7</sup>

- 
- 1- ल. ज. सिं० चतुर्दश तरंग, छन्द सं० 15  
 2- वही- छन्द सं० 16  
 3- वही- पंचदश तरंग, छन्द सं० 315  
 4- वही- छन्द सं० 487  
 5- वही- छन्द सं० 488  
 6- वही- त्र. त. छन्द सं० 49  
 7- वही- चतुर्दश तरंग, छन्द सं० 187

तदभव :

तदभव रूप में जस, जोधा, परताप, दरीदर, कीरति, कान्ह, दुति  
आनि इत्यादि शब्द आये हैं -

- जस जगवत दिस गज नित गजो दिन प्रति कर जगन ।<sup>1</sup>  
 क्वी जोधा खूँ जोर अंगी है षान ।<sup>2</sup>  
 परताप लखपति को परसै कल दोडत सत्रु दरीदर से ।<sup>3</sup>  
 कीरति जकुरूपति की अमृत जौन्हि कमल ही असी ।<sup>4</sup>  
 लाख आनि फाप कनक ले सही न तुसरंग सोय ।<sup>5</sup>  
 आली जब ये सरूप तबै अति कान्ह को राधे लगै सुख कंदहि ।<sup>6</sup>  
 चंद की सीतलता दुति ही नि ल्है तुअ आनन जोति जगै जग ।<sup>7</sup>

प्राकृत - प्राकृत के शब्द हुआ, सुअ, मिष, तुअ मिलते हैं -

- उद्धत प्रताप जाको अविना सुदृढ सुमेरु सरूप हुआ ।<sup>8</sup>  
 महाराज लखपति नृप सहित । दीप देशल राउ सुअ ।<sup>9</sup>  
 दान शब्द सब दीप में मुदित सुन्यो कवि मिष ।<sup>10</sup>  
 है उपगार को देह शिहारिये या जग में तुअ बात प्रमानहि ।<sup>11</sup>

- 1- ल. ज. सि० चतुर्दश तरंग-कन्द सं० 165  
 2- वही- कन्द सं० 177  
 3- वही- कन्द सं० 268  
 4- वही- पंचदश तरंग, कन्द सं० 301  
 5- वही- <sup>षा. त.</sup> कन्द सं० 94  
 6- वही- त्र. तरंग, कन्द सं० 45  
 7- वही- कन्द सं० 60  
 8- वही- प्र. त. कन्द सं० 2  
 9- वही- कन्द सं० 2  
 10- वही- कन्द सं० 7  
 11- वही- च. त. कन्द सं० 39

अप्रभ्रंश :  
००००००००

अप्रभ्रंश की यह विशेषता रही है कि इसमें शब्दों का द्वित्त पाया जाता है। कुँवरकुशल ने ऐसे अप्रभ्रंश के शब्दों का प्रयोग भी वीरता के प्रसंगों में किया है जो कि बड़े ही उचित बन पड़े हैं -

बज्जिय नौवति पुज्जिय जय पद अस चढ़ि असि गहि ।<sup>1</sup>  
गज गजनि गज्जिय बंब बज्जिय सुभटै सज्जिय कट कटा ।<sup>2</sup>  
जस कित्ति नांव ए जगाहय परतहि सुभ फल पाहयै ।<sup>3</sup>  
बीर महा बडी धीरज तै लषाधीर विपक्खि तै जंग अटक्कत ।  
द्वै भुज वंडनि तै अरि भुंड के गैद ज्यौं मुंडनि भूमि पटक्कत ।  
कातीलै क्हाती कौं मांस पिसाचनि औंहु चलाय चलाय पटक्कत ।  
मांस केँ ग्रास तै घट्ट घटे उनिलोहू घटै घट लै लै घुटक्कत ।<sup>4</sup>

अवधी : आंखि, अरोख, अटारी, कीन, कीनी जैसे अवधी शब्द श्री कुँवर लखपतिजय मिश्र की आषा में सम्मिलित हो गए हैं—

फाणि फराण अटारी कहु बोल कान आये नगर में ।<sup>5</sup>  
दूसरी समा तो असी देषी नाहि भुनि तैसी सुर की समा न वसी  
साहि की कीनु महामति ।<sup>6</sup>  
असी कीनी विद्या सकल बुद्धिबल तै अगाहि ।<sup>7</sup>

- 
- 1- वही - चतुर्दश तरंग, कन्द सं 240  
2- वही - कन्द सं 276  
3- वही - लखपति <sup>जयसिन्धु</sup> कन्द सं 782  
4- वही - षाष्ठ तरंग, कन्द सं 51  
5- वही - चतुर्दश तरंग, कन्द सं 274  
6- वही - कन्द सं 3  
7- वही - कन्द सं 4

अरबी :

कुंवरकुशल वनेअमीर, मगहर, खबरदार, कायम जैसे अरबी शब्द भी शामिल कर लिये हैं -

एक ओर देखायत बडे बडे उमराउ एक ओर है अमीर बडेब परमानके ।<sup>1</sup>  
 शित इसन, काति हीरादिमाक, मगहर पुरमन मच्छे हाकु 2  
 भूद्व वद के मननहार षट दशन ताकिके खबरदार ।

कायम है करवाल राजत लषाधीर सुकर भुगराजा ।<sup>4</sup>

फारसी :

फारसी में खनी, खता, खूब, खान, बक्सीस इत्यादि शब्द प्रयुक्त हुए हैं -

खनी पावे है खता संत रहे श्रीवाय ।<sup>5</sup>

कुत्री जोधा खम ओर जंगी है खान ।<sup>6</sup>

करत विनती यह कुंवर कविवर सुभ करि बक्सीस ।<sup>7</sup>

एक स्थान पर बक्सीस के बजाय बगसीस भी प्रयुक्त किया है -

जाकी बगसीस सुनि लाजत श्वीस बीस थर थर कपे गात सोने के पहार कौं ।<sup>8</sup>

ग्रन्थ की प्रथम तीन तरंगों में अरबी फारसी के शब्दों का बहुत प्रयोग मिलता है ।

तुकी :- तुकी भाषा के जंगल शब्द का प्रयोग भी देखने को मिलता है -

- 
- 1- वही- प्र. कुन्द सं० 3
  - 2- वही- द्वि. तरंग, कुन्द सं० 180
  - 3- वही- कुन्द सं० 213
  - 4- वही- पंचदश तरंग, कुन्द सं० 497
  - 5- वही- चतुर्दश तरंग, कुन्द सं० 143
  - 6- वही- कुन्द सं० 176
  - 7- वही- कुन्द सं० 314
  - 8- वही- षाष्ठ तरंग, कुन्द सं० 66

दौरि जंजाल प्रहै जग जाल को जाल जौ माल के जाल बहाउ ।<sup>1</sup>  
सिन्धी :

कुँवरकुश ने सिन्धी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया है जैसे - बीय, गादी, काती, नुषाती, इत्यादि -

येक मयी आनन्द<sup>बीय</sup> में नहीं बिराजे ।<sup>2</sup>  
 तिनकी गादी तेज षग बहूरयो अमोघ बान ।<sup>3</sup>  
 सामा सो यो जंग में कान्हा को नाती, साले सत्रु के सदा जाकी ये काती ।<sup>4</sup>  
 बरफी रु सुषापुरी अकबरीति नुषाती ह्लुवाफी नीनिवीनि ।<sup>5</sup>

गुजराती :

गुजरात प्रान्त में रह कर ग्रन्थ का प्रणयन करने के कारण प्रादेशिक प्रभाव से प्रभावित होकर गुजराती शब्दों का समावेश भी हो गया है । जैसे- जबर, वतुल, मुनशी, खोरी, षांड, तथा गुंदपाक धूजत इत्यादि -

जुंज भये तिनके जबर कोटि विपंछ कृशानु ।<sup>6</sup>  
 असमान उच्चगढतित उतंग। बनि मुरज उरजने वतुल अमंग ।<sup>7</sup>  
 नागर समूह षिजमति निर्धान। मुन्सी रू पचारी गन प्रभात ।<sup>8</sup>  
 पेणिये अन्न की जोर पीठ मधु षांड तेल घृत छुंड मजीठ ।<sup>9</sup>  
 पाहये रेवरी गुंदपाक गुलगुले लेत लोंगनि लटाक ।<sup>10</sup>  
 लषापति रूप सुक्त्रि लषि थर थर धूजत हाथ ।<sup>11</sup>

- 
- 1- वही- कन्द सं० 61
  - 2- वही- प्र. त. कन्द सं० 1
  - 3- वही- कन्द सं० 64
  - 4- वही- चतुर्दश चतरंग, कन्द सं० 304
  - 5- वही- द्वि. तरंग, कन्द सं० 190
  - 6- वही- प्र. तरंग, कन्द सं० 52
  - 7- वही- द्वि. तरंग, कन्द सं० 147
  - 8- वही- कन्द सं० 159
  - 9- वही- कन्द सं० 183
  - 10- वही- कन्द सं० 188
  - 11- वही स. त. कन्द सं. 12

इन सबके अतिरिक्त कुँवरकुशल ने एकाध स्थल पर डौह (डमह) जैसे अप्रचलित शब्द और सँत (श्यन) जैसे विकृत रूपों का भी प्रयोग किया है -

आधे आ गौरि हाथ में डौह वाजे ।<sup>1</sup>

पहेनि के पाननि पे सँन किया राति उहाँ प्रात भये थोरी सील जाति  
इहाँ अह है ।<sup>2</sup>

कुँवरकुशल ने दा के के रूप में प्रयोग किया है जैसे- क्वी (दात्री)  
परतक्कि (प्रत्यदा) क्कमा (दामा) लक्किन (लदाणा) कटाक्क (कटादा) इत्यादि -

क्वी आदो क्कजा दीपे संसार में दानी ।<sup>3</sup>

जस कित्ति नांव जगहये परतक्कि सुभ फल पाहये ।<sup>4</sup>

क्कमावत बडागत क्वि/देशल राउ व्याल ।<sup>5</sup>

सुधर रानिये जदपि शुभ।बनी लक्किन बतीस ।<sup>6</sup>

कंत कटाक्किनि मुज कर अमरा अमरी वेण ।<sup>7</sup>

### भाषा दोष :

कोई भी कवि चाहे कितना भी भाषा के सन्दर्भ में सजग हो फिर भी कहीं न कहीं कोई त्रुटि अवश्य रह जाती है। कुँवरकुशल के सम्बंध में भी यही कहना

1- (अ) भिखारीदास ने ~~मिहस~~ शब्द का प्रयोग किया है -

डौह करधारे गौरि डैक उतपल सौ ।

आचार्य भिखारीदास - डा० नारायणदास खन्ना, पृ० 143 से उद्धृत ।

2- (आ) लखपति <sup>जसुरिध</sup> मिमल, चतुर्दश तरंग, कन्द सं० 207

3- वही - ज. त. सं. सं. 26  
ल. ज. सि० कन्द सं० 469

4- वही - कन्द सं० 782

5- वही - प्र. त. कन्द सं० 101

6- वही - कन्द सं० 113

7- वही - कन्द सं० 132

कहा जा सकता है। ए जैसे यहाँ पर लिंग-दोष मिलता है -

मैं बरजे बहिले ही प्रिया तुम प्रान सु मेरे न आं लगेँ येँ ।  
आठहुं जाय सुराणि हौं छाती पै ताहि अबे कहौ क्यों बिरमैँ ॥

येँ तुम मांगी नही यह बात कहौ अब कैसे कियेँ समुझैँ ॥  
चालत हौं तुम द्वारिका कौं हरि तौं हनि कौं ले आऊ कलैँ ॥<sup>1</sup>

यहाँ पर कथन प्रियतमा का प्रिय से है जिसके लिए बरजे शब्द प्रयोग किया है जबकि बरजी होना अच्छा चाहिये। पुनः तीसरी पंक्ति में 'माने' शब्द होना चाहिये जबकि 'मानी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। यहाँ पर लिंग दोष है।

इस तरह हम देखते हैं कि कुँवरकुशु की भाषा सुन्दर, माध्यपूर्ण, गत्यात्मक तथा प्रभावशाली है। कवि ने भाव के अनुकूल भाषा का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। भाषा के द्वारा भाव का चित्र उपस्थित कर देना कुँवरकुशु की विशेषता प्रतीत होती है। ध्वन्यात्मक शब्द-प्रयोग से नाद सौंदर्य में अभिवृद्धि होती है। लखपति जससिन्धु भाषा-प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अनेक भाषाओं के शब्दों को ब्रजभाषा के साथ प्रयुक्त किया है तथापि ब्रजभाषा की प्रकृति अक्षुण्ण रही है। उसमें कुछ अन्य शब्दों के आगमन से किसी प्रकार का विकार नहीं आने पाया है।

शैली :

प्रत्येक कवि अथवा कलाकार की अपनी निजी शैली होती है, जिसके माध्यम से वह अपनी बात पाठक तक पहुँचाता है। अपनी बात को प्रभावशाली

बनाने के लिए कहीं वह व्यंग्य का सहारा लेता है तो कहीं अपने मत को स्पष्ट करने के लिए व्याख्यापूर्ण कथन भी प्रस्तुत करता है, कहीं पर विवेचनात्मक टिप्पणी देकर भी अपनी बात को समझाता है। शैली का वैविध्यपूर्ण प्रयोग किसी स्वच्छंद कवि की कविता में सहज सम्भाव्य है किन्तु शास्त्र की लीक पर चलने वाले आचार्य की रचना में शैली की विविधता यदि न दीख पड़े तो आश्चर्य नहीं। वहाँ तो सरल वाणी में, सरल ढंग से अपनी बात पाठक के मन पर उतार देनी होती है। यहाँ आचार्य का लक्ष्य होता है अपने कथन को स्पष्ट कर देना। यही कार्य कुम्हारकुशल ने अपने ग्रन्थ 'लक्षपति जस सिन्धु' में किया गया है। अतः लक्षपति जस सिन्धु में व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग हुआ है, यहाँ पर व्याख्यात्मक तथा टीका शैली के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

व्याख्यात्मक शैली का उदाहरण -

रूढ शब्द मू में रचत । योगिक विधि सुत ब्रह्म ज्ञेय ।

पंक्त रूढ योगि पढि । कहै त्रिविध सब कोय ॥

व्याख्या :- रूढ कहा जा शब्द का र अर्थ न भासे । एक ही वस्तु में वाकी प्रसिद्धता कठ से रूढ जैसे मू शब्द या का अर्थ पृथ्वी हि वीष्णो सब कोउ समुक्त प्रसिद्ध है । और योगिक कह जो जैसे जहाँ योग होय तैसे तहाँ करि लीजें । जैसे- विधि सुत ब्रह्मा को पुत्र । तो ब्रह्मा के पुत्र तो बहूत हैं । जैसे प्रसंग देणियें तैसे तहाँ कहिये ॥ जो भक्त के उपदेश को प्रसंग होय तो नारद समुक्तियें जो सृष्टि अ के उपजायबे को प्रसंग होय तो कश्यप समुक्तियें । अहिं कोतय शब्द है । भावदीता में अर्जुन यज्ञ वार्ता में युद्धिष्ठिर बल वार्ता में भीम जैसे जानियें ॥ और तन्मिच्छरूढ हू होय ॥ अरू योगि कह हू होय ॥ जैसे पंक्त शब्द प्रसिद्ध तो कमल ही में । यह रूढता म्ह ॥ अरू योग पढि जे की बतें उपजें ते सिंधारे आदि जानि लीजें । और हू बुद्धि सौ ॥<sup>1</sup>

टीका शैली का उदाहरण :-

किधौ कहु नवीने ये चंद के चकोर भये दृग लाये यामिनी के चारो  
जाम जागे है ।  
किधौ कोऊ अनमिषा ब्रत लीनो देषियत प्रात ही के पंकज की कृबि  
क्षीनि मागे है ।  
किधौ कहु नृत्य भेद निरणे है गाध्रिनि के बदन के रंग पहिराय  
राणे तागे है ।  
लाल गुल और गुलाल जीतत है प्यारे लाल सांची कहौ लोहन में कौन  
रस पागे है ॥

टीका :

नायिका की उक्ति नायक से। आजि तुमारे नेत्र काहु चन्द्र के चकोर भये है । येक टग लाये राति के चारि पहर जागे है के कोऊ अनमिषा ब्रत लीनो है के प्रभात के पंकज जो कमल तिन की कृबि क्षीनि के मागे है । के कहु नृत्य कारिणी को नृत्य देख्यो है तिनिसो बदन के रंग को बागे पहिराये है । लाल गुल और गुलाल के रंग को जीतत है लाल सांच कहौ तुमारे लोहन कौन से रस में पागे है कहत मान भये है । इहाँ सदेहालंकार तै नायक को क्लासपरायत्व प्रकाशन रूप वस्तु व्यंग्य इन उदाहरननि में कवि के स्थाये वक्ता की उक्ति तै व्यंग्य जानिये ॥<sup>1</sup>

प्रत्येक रचयिता की रचना में उसकी दिनचर्या का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है अथवा उसका व्यक्तित्व उसमें अवश्य प्रतिफलित होता है । कुँवरकुशुल भी इसके अपवाद नहीं । कुँवरकुशुल भुज की ब्रजभाषा काव्यशाला में अध्यापन का

कार्य करते थे। अतः इस ग्रंथ में उनकी अध्यापकीय शैली भी देखने को मिलती है। एक अध्यापक विद्यार्थियों के समक्ष प्रारम्भ में आवश्यक निर्देश देता हुआ अपने विषय से सम्बन्धित बाह्य रूपरेखा बताता है, तत्पश्चात् विस्तृत विवेचन की ओर अग्रसर होता है। अन्त में पुनः सार रूप में अपने समस्त कथन को सरल शब्दावली में दुहराता है। यदि कहीं पर भेद वर्णन है तो उन समस्त भेदों को सूची रूप में वर्णित करता है जिनका वर्णन वह कर चुका होता है। ऐसा ही प्रयास कुँवरकुशल ने भी किया है। उदाहरणतः हम शब्दशक्ति, ध्वनिकाव्य, दोषा-वर्णन इत्यादि की तरंगें प्रस्तुत कर सकते हैं। इनमें तरंग के अंत में पुनः उनके भेदों का वर्णन किया गया है। अतः इस प्रकार का विवेचन विद्यार्थियों को समझाने हेतु किया गया है जिससे छात्र अच्छी तरह दृढ्यंगम कर सकें। कुँवरकुशल की इसी अध्यापकीय शैली पर प्रकाश डालते हुए कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह कहते हैं कि - 'आचार्य कुँवरकुशल ब्रजभाषा पाठशाला में अध्यापक थे और उनकी काव्यशास्त्र विषयक मीमांसाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे शिक्षा कला में भी निष्णात रहे होंगे। उनके काव्यांगों के विवेचन में गहन विद्वता और कुशल अध्यापक की प्रकृति सुबोधता का बड़ा मनोसंज्ञ सामंजस्य मिलता है।'<sup>1</sup>

इसके अतिरिक्त रीतिकालीन आचार्यों का उद्देश्य भी लोगों को शिक्षा देने का रहा था। संस्कृत की समस्त सामग्री से हिन्दी-जगत् भी भिन्न हो सके, ऐसा उद्देश्य रीतिकालीन आचार्यों का रहा है। कुँवरकुशल का भी यही उद्देश्य रहा है (इस पर पीछे प्रकाश डाला गया है)<sup>2</sup> इसी कारण 'लक्षपतिनससिन्धु' में व्याख्यात्मक, गद्यात्मक तथा अध्यापकीय शैली का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

1- कविराज गोपकृत काव्यप्रभाकर किंवा रुक्मिणी-हरण तथा अन्य ग्रन्थ-

सं० कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह, पृ० 32

2- प्रस्तुत प्रबंध का प्रथम अध्याय -

### बिम्ब का महत्व :

विधाता द्वारा रची गई इस बाह्य सृष्टि की भाँति कवि के अन्तः में भी एक अन्य सृष्टि होती है जिसका सृष्टा स्वयं कवि होता है। इस सृष्टि की रचना कवि कल्पना द्वारा बहुरंगी भाव चित्रों का समावेश करके करता है। ये बहुरंगी भावचित्र ही जब विशिष्ट शब्दों का नामा पहनकर हमारे सम्मुख आते हैं तो वे ही बिम्ब की संज्ञा ग्रहण कर लेते हैं। बिम्ब कवि की कल्पना से प्रसूत एक संश्लिष्ट प्रक्रिया का ही दूसरा नाम है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के विचारानुसार - वह (बिम्ब) क्वं तत्वों से निर्मित होने के कारण स्थिर न होकर गतिशील होता है, और उसका प्रतीक की तरह पूर्व स्वीकृत अर्थ नहीं होता। इसलिए कविता में अर्थ को स्वायत्त तथा विकसनशील बनाए रखने का मुख्य दायित्व बिम्ब पर होता है।<sup>1</sup> कवि अपनी भावनाओं, अपने विचारों को विशिष्टता प्रदान करते हुए प्रस्तुत करता है, इस प्रस्तुतीकरण के लिए यदि वह बिम्बों का सहारा लेता है तो उसके कथन में कहीं अधिक रोचकता तथा मार्मिकता आ जाती है, अर्थात् कवि अपने कथन को और भी अधिक रोचक और मार्मिकता पूर्ण बनाकर प्रस्तुत करना चाहे तो बिम्ब के माध्यम से कर सकता है। बिम्ब मानव जीवन की सामान्य से सामान्य घटना अथवा संवेदना का प्रथम लेकर अपने स्वरूप का निर्माण करता है। एक बार किसी भी घटना अथवा दृश्य को देख लेने के पश्चात् यदि पुनः उसका अवलोकन करना चाहे तो उस समय मस्तिष्क को क्रियाशील होना पड़ता है, इस क्रियाशीलता की प्रक्रिया में कल्पना का प्रमुख हाथ रहता है क्योंकि उस समय उक्त घटना अथवा दृश्य प्रत्यक्ष नहीं रहता, उस समय प्रत्यक्षीकरण के स्थान पर

कल्पना का प्रय लेना पड़ता है और इस काल्पनिक अनुभूति के कारण ही बिम्ब विधान सम्भव हो पाता है। साहित्यिक बिम्ब में किसी भी दृश्य अथवा घटना की अविकल मात्र प्रतिच्छाया बन होकर प्राण सम्पन्न तथा सजीवता तथा सजगता ही दृष्टिगत होती है। बिम्ब मानव जीवन की संवेदनाओं, भावनाओं तथा आवेगों सभी से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। एक निजीक दृश्य की अनुकृति होते हुए भी सजीव होता है। साहित्य में ही नहीं धर्मशास्त्र में भी बिम्ब को पर्याप्त महत्ता प्राप्त है। उस अमूर्त सत्ता को अनुभवगम्य बनाने के लिए बिम्ब का ही सहारा लिया जाता है। रहस्यवादी कवि उस निर्गुण सत्ता की अमिव्यक्ति के लिए बिम्बों की विनियोजना करते हैं। निर्गुण ही सगुण के रूप में अवतरित होकर मानव मन के लिए सहज ही गम्य और सुबोध बन जाया करता है।

इसी प्रकार साहित्य में सूक्ष्म भावों को हृदयंगम करने के लिए बिम्ब की आवश्यकता पर बल दिया गया है। वर्खसवर्थ ने समस्त काव्य को मानव अथवा प्रकृति का बिम्ब माना है।<sup>1</sup> इसी कारण से काव्य में चित्रात्मकता का गुण समाविष्ट किया गया है। चित्रात्मकता के गुणों के कारण बिम्ब का सृजन अति सुगम बन जाता है। चित्रात्मकता के गुण के अभाव में बिम्ब की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसी सम्बन्ध में डॉ० सुधा सक्सेना का विचार है कि - चित्रों की मोहकता से कवि पाठक को सहज ही उस भावभूमि पर ले जाता है जहाँ वह कवि की अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण करने में समर्थ होता है। क्योंकि बिम्बों का प्रयोग और बिम्बों का ग्रहण मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।<sup>2</sup> कवि का चाक्षुष्य वर्णन पाठक के लिए बिम्बात्मक बन जाया करता है। कवि जो कुछ भी बिम्ब रूप में प्रस्तुत करता है, पहले अपने कल्पना जगत् में अपने मनः चक्षुओं द्वारा दृष्टिपात कर लेता है, तत्पश्चात् उससे

1- जायसी की बिम्ब योजना- डॉ० सुधा सक्सेना, पृ० 33 से उद्धृत।

2- वही- पृ० 33

ठीक वैसा ही पाठक का भी रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कराने के लिए पाठक के सम्मुख उपस्थित करता है जैसा कि स्वयं रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किए हुए होता है अर्थात् अपने मनोभावों के साथपाठक का साधारण गीकरण कराने के लिए ही चित्र रूप में पेश करता है। इसी चित्र भाषा के सम्बन्ध में पन्त जी का विचार है - 'कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिये, जो बालते हों, सेब की तरह जिसके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर फलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँसुओं के सामने चित्रित कर सकें जो फँकार में चित्र और चित्र में फँकार हों।'<sup>1</sup>

बिम्ब में शाश्वतता का गुण विद्यमान रहता है। ईश्वर द्वारा निर्मित इस सृष्टि में सभी कुछ परिवर्तनशील है। प्रत्येक वस्तु सदैव अपने मूल रूप में नहीं रहती, उसका स्वरूप बदलता रहता है। समय के चक्र के साथ-साथ तत्कालीन परिस्थितियों और प्रेरक तत्वों से प्रभावित होकर काव्य के प्रतिमानों, काव्य के मूल्यों तथा प्रवृत्तियों में बदलाव आता रहता है परन्तु बिम्ब एक ऐसा माध्यम है जिसमें सदैव अपरिवर्तनशीलता का गुण मिलता है। इतना अक्षय है कि परंपरित बिम्ब को कवि अपनी प्रतिभा के बल पर एक नये ही ढंग से प्रस्तुत कर सकता है। इसके सम्बन्ध में आलोचक लुहस ने लिखा है - 'बिम्ब ही काव्य का मूल प्रतिपाद्य है। समय के परिवर्तन के साथ-साथ काव्य के उपकरण भी परिवर्तित होते हैं, छंद परम्परा, विषय-वस्तु, भावगत प्रवृत्तियाँ, यहाँ तक कि काव्य का मूल भूत विषय प्रतिपादन तक परिवर्तित हो जाता है, परन्तु बिम्ब सदैव विद्यमान रहता है, उसमें कभी परिवर्तन नहीं आता।'<sup>2</sup>

1- पल्लव-सुमित्रानंदन पंत, पृष्ठ सं० 30

2- जायसी की विष्णु योजना-डॉ० सुधा सक्सेना, पृ० 35 से उद्धृत।

इसी बिम्ब के माध्यम से कवि की प्रतिभा का भी अनुमान लगाया जा सकता है। कवि की उर्वरा शक्ति, कवि की कल्पना शक्ति कितनी अधिक तीव्र तथा सचेत है, इसका पता कवि द्वारा प्रस्तुत किए गए बिम्बों से चल सकता है। बिम्बों के प्रस्तुतीकरण में, बिम्बों के औचित्यपूर्ण प्रयोग में ही कवि-कर्म की महत्ता छुपी हुई है। बिम्ब का प्रस्तुतीकरण इस ढंग से किया जाता है कि वह संश्लिष्ट होकर प्रत्यक्ष रूप धारण कर लेता है। उदयशंकर श्रीवास्तव का कहना है कि - 'भौतिक पदार्थ चक्षुर्ग्राह्य होकर भौतिक नहीं रह पाता, प्रत्युत हमारे लिए उसका स्वरूप बोधात्मक (मानसिक प्रक्रिया में) हो जाता है और बोधात्मक पदार्थों में ही हमें भौतिक जगत् के अस्तित्व का ज्ञान होता है।'<sup>1</sup>

इतना होते हुए भी बिम्ब ही काव्य में सब कुछ नहीं, कवि द्वारा प्रयुक्त एक प्रकार की प्रणाली है जिसके माध्यम से अपनी बात को और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सके। यही उद्देश्य इस बिम्ब के द्वारा पूर्ण किया जा सकता है। इसके लिए डॉ० नान्द्र कहते हैं - 'बिम्ब काव्य का अत्यन्त प्रभावी माध्यम है और इसलिए काव्य के सन्दर्भ में उसका मूल्य अान्दिग्ध है। परन्तु वह स्वतंत्र नहीं है- माध्यम ही है, प्राण तत्व नहीं है। काव्य का सहकारी मूल्य अशुभ है, प्रार्थमिक मूल्य नहीं है।'<sup>2</sup>

अतः कहा जा सकता है कि बिम्ब काव्य में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किए हुए है जो कि प्रेषणियता के कारण सहज ही ग्राह्य बन जाया करता है।

1- साहित्यिक निबन्ध -सम्पादक-डॉ० त्रिभुवन सिंह, पृ० 640

2- 'कविता- डॉ० कांतिकुमार, पृ० 233 से उद्धृत।

### बिम्ब का अर्थ :

मनुष्य के जीवन में बिम्ब विधान अथवा कल्पना का बड़ा महत्व है। प्रस्तुत परिवेश के सवेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की, तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटने वाली वस्तुओं और घटनाओं की आस्थ प्रतिमाएँ रहती हैं। बिम्ब शब्द इसी मानस प्रतिमा का पर्याय है।<sup>1</sup> डॉ० कुमार विमल के मतानुसार- 'बिम्ब कवि के भाव का ऐसा समानुवर्तक अथवा समतुल्य है जो पाठक के सवासन चित्त में कवि के भाव का प्रतिबिम्ब भर देता है। अर्थात् कवि के बिम्ब को ऐसा होना चाहिए, जो पाठक की शिक्षा, शील, संस्कार और रुचि से किंचित आनुकूल्य रखता हो।'<sup>2</sup> कवि द्वारा प्रस्तुत बिम्ब जब तक पाठक के लिए परिचित नहीं होगा तब तक वह उसे हृदयंगम करने में कठिन है का अनुभव करेगा और कवि के प्रतिपाद्य तक पहुँचने में असमर्थ ही रहेगा। अतः बिम्ब में परिचितता के साथ-साथ साम्य का गुण भी आवश्यक होना चाहिए। इससे साम्य के गुण पर प्रकाश डालते हुए प्रह्लास ने कहा है कि- 'बिम्बों को प्रतीकित करने की एक अलग पद्धति है, जो साम्य द्वारा सम्पन्न होती है।'<sup>3</sup> किसी भी वस्तु या दृश्य के वर्णन के लिए उसी से समता रखने वाली वस्तु या दृश्य प्रस्तुत किया जाता है अर्थात् कवि के भावों और विचारों की समानुकृति होनी चाहिए। परन्तु यह केवल कोरी अथवा शुष्क व नीरस समानुकृतिहीन हीं वरन् इसमें कवि की अपनी सवेदना तथा उसकी भावुकता का भी पर्याप्त सन्निवेश निहित रहता है। बिम्ब में सादृश्यता का होना बहुत आवश्यक है। किसी भी भाव, विचार अथवा अनुभूति को प्रकट करने के लिए उसी के समान किसी अन्य का वर्णन करना ही

1- हिंदी साहित्य-कोश, पृ० 514

2- 'कविता- नई आलोचना और कला'- डॉ० कुमार विमल, पृ० 13

3- साहित्यिक निबंध -सम्पादक-डॉ० त्रिभुवनसिंह, पृ० 650 से उद्धृत।

सादृश्यविधाल के द्वारा बिम्ब का निर्माण होता है परन्तु आवश्यकता है बिम्ब के अन्तर्गत आता है। विचारात्मकता और भावात्मकता की। वेदव्रत शर्मा के मतानुसार- बिम्ब किसी वस्तु की अनुकृति नहीं है, वरन् किसी कवि की अनुभूति एवं कल्पना की एक सृष्टि है। यह सृष्टि न तो 'असल' है और न 'असल' की नकल ही। 'असल' एक वस्तु, घटना या वस्तु मूलक अनुभूति है। कवि 'असल' की मौलिक नकल भी नहीं करता, वरन् वह शब्दों में अपनी अनुभूतियों के ऐसे चित्र प्रस्तुत करता है, जिनमें कल्पना की काट-छाँट या रंगीनी समाविष्ट रहती है।<sup>1</sup> कवि बिम्ब को चारुता के साथ प्रस्तुत करता है जिससे हम उससे पूर्णतः मानसिक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। बिम्ब वर्ण्यवस्तु (Content) को सुभा रूप (Form) में व्यक्त करने के माध्यम है। अतएव, बिम्ब एक ओर अन्तर्विती कृन्द की पकड़ द्वारा वर्ण्य को कलात्मक अभिव्यञ्जना की दिशा में ले आते हैं और दूसरी ओर अभिव्यक्त पदा(रूप) को चारुता प्रदान करते हैं।<sup>2</sup> काव्य में बिम्ब स्पष्टतः ही प्रस्तुत किया जाता है। बिम्ब कवि के मन पर अंकित हुए पूर्व संस्कारों, पूर्व संवेदनाओं और पूर्व भावनाओं के द्वारा अभिव्यक्त पाता है। बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया में मनुष्य के पूर्व संचित मनोभावों को ही प्रयत्न मिलता है। कविता में सम्वेदना का प्रकाशन होता है। इस सम्वेदना को प्रकट करने के अनेक स्रोत हैं। रिचर्ड एच० फोगेल ने इसी सम्वेदना का महत्व निर्देशित करते हुए कहा है - भस्तिष्क के सम्मुख मूल और मौलिक सम्वेदना को अधिक से अधिक विश्वसनीय, सही और व्यापक रूप में प्रस्तुत करती है। इस प्रकार से एक काव्यात्मक बिम्ब केवल सम्वेदना का प्रकाशन है।<sup>3</sup> बिम्बों के निर्माण में दैनिक अनुभूतियों का योगदान रहता है। बिम्ब कल्पनाश्रित होते हुए भी सत्य का आभास दिलाने वाला है। किसी

1- निराला के काव्य बिम्ब और प्रतीक- वेदव्रत शर्मा, पृ० 10

2- साहित्यिक निबंध- सम्पा० डॉ० त्रिभुवनसिंह, पृ० 647

3- जायसी की बिम्ब-योजना- डॉ० सुधा सक्सेना, पृ० 37 से उद्धृत।

भी घटना अथवा दृश्य को ग्रहण करके अनुभूति के द्वारा बिम्ब कवि को निर्मित किया जाता। इसलिए कहा गया है - 'बिम्ब वास्तविक वस्तु नहीं है, परन्तु उससे भिन्न होते हुए भी, अर्थ होते हुए भी उसके अनुरूप ही होती है। अनुकृति होते हुए भी वह सत्य का आभास दिखाती है।'<sup>1</sup>

इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि बिम्ब कवि द्वारा प्रयुक्त किया जाने वाला एक ऐसा माध्यम है जिसकी पृष्ठभूमि में कवि की अपनी सम्बेदना, अनुभूति, भावना विचार तथा आवेगपूर्ण स्थिति का पूर्णतः सामंजस्य कार्य करता है। इन सभी तत्वों में घटना अथवा दृश्य की समतुल्यता अवश्य विद्यमान रही है। बिना किसी प्रकार की समता के बिम्ब का निर्माण असम्भव ही रहता है चाहे वह समता स्वरूपात्मक हो अथवा गुणात्मक।

### बिम्ब के तत्व :

इन परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में हमारे सम्मुख बिम्ब के निम्नलिखित तत्व उभर कर आते हैं - (1) कल्पना (2) अनुभूति (3) भाव (4) आवेग (5) ऐन्द्रियता।

### (1) कल्पना :

कल्पना एक ऐसा तत्व है जिसके द्वारा बिम्ब का निर्माण किया जा सकता है। जिस कवि में जितनी अधिक कल्पनाशक्ति होगी, उसका बिम्बविधान उतना ही उत्कृष्ट होगा। कल्पना के अभाव में बिम्ब उतना सुन्दर नहीं बन सकता चाहे कवि में अनुभूति की सघनता हो अथवा किसी दृश्य या घटना को ग्रहण करने

1- जायसी की बिम्ब योजना- डॉ० सुधा सक्सेना, पृ० 37 से उद्धृत।

की तीव्र शक्ति। बिम्ब के इसी कल्पना तत्व पर प्रकाश डालते हुए वेङ्कट शर्मा कहते हैं - 'अपनी कल्पना की तुलिका से आल' की अनुभूति में वह जो रंग भरता है, वही तो साहित्यिक बिम्ब है।<sup>1</sup> बिम्ब काव्य में ही नहीं सामान्य जीवन में भी प्रयुक्त किए जाते हैं। शब्दों का सामूहिक रूप बिम्बों की सृष्टि करता है। इसके लिए आवश्यक नहीं है कि अधिक से अधिक शब्दों की विनियोजना की जाये। कम से कम शब्दों के प्रयोग से भी अधिकाधिक भावों का प्रकाशन किया जा सकता है, और इसके लिए कल्पना का ही प्रयत्न लिया जाता है। काल्पनिक जगत् में सर्वप्रथम इस प्रकार का दृश्य अथवा चित्र निर्मित कर लेता है पुनः उसे हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। इस प्रक्रिया में कल्पना का प्यारित समावेश रहता है। इस लिए कहा गया है कि - 'जब कवि अनुभूतियों के कल्पनाश्रित चित्र अंकित करता है, तभी शब्दों के माध्यम से बिम्ब सौन्दर्य उभर और निरर पाता है। कविता में भाव-पृथुलता स्मृति-योग से नहीं आती, कल्पना योग से आती है।'<sup>2</sup>

## (2) अनुभूति :

बिम्बों के निर्माण में अनुभूतियाँ भी सहायक होती हैं। अनुभूति रूपी नींव पर ही बिम्ब रूपी मवन का निर्माण सम्भव हो पाता है। अनुभूति की सघनता जितनी अधिक होगी, बिम्ब उतना ही अधिक प्रभावित करनेवाला बनेगा। जब तक अनुभूति में सघनता नहीं है, कवि के मन में सम्वेदनाओं का बिम्ब बनना सम्भव नहीं है। वास्तव में काव्य में स्मृति ही अनुभूति के आधार पर बिम्बात्मक स्वरूप धारण कर लेती है। वेली के कथनानुसार - 'अनुभूतियाँ स्मृति में समाहित रहती हैं उनका स्वरूप मिश्रित होता है और जब यह मिश्रित स्वरूप अभिव्यक्त होने के लिए कोहे'

1- निराला के काव्य बिम्ब और प्रतीक- वेङ्कट शर्मा, पृ० 10

2- वही- पृ० 11

आकार खोजता है तब काव्य या कला या मूर्तियों में बिम्ब का निर्माण होता है।<sup>1</sup> वस्तुतः घटना या दृश्य अपने आप में बिम्ब नहीं होती, परन्तु अनुभूति को संस्पर्श पाकर ही वह घटना अथवा दृश्य बिम्ब बन जाता करता है। इसलिए लुहसे ने कहा है - 'बिम्ब वस्तु का केवल चित्रण नहीं होता, वरन् पूर्वानुभूति के एक विशिष्ट सन्दर्भ से उसका आकलन होता है, यह सन्दर्भ उसकी एक मूल आवश्यकता है।'<sup>2</sup> कवि के हृदय में स्थित सम्बेदना में निहित अनुभूति को बाहर से नहीं आती, वह उसी में रहती है। अनुभूति और स्मृति श्रृंखलाबद्ध होकर ही काव्य में अवतरित होती हैं। कवि के हृदय से निकलने वाली कविता में अनुभूति और स्मृति का परस्पर तारतम्य बना रहता है। इसीलिए वेदव्रत शर्मा का कथन है कि - 'काव्य-सृजन कला में अनुभूतियों कल्पना का सहारा लेकर बिम्ब-निर्माण में अपना योगदान देती है और कविता शब्दों के माध्यम से उन्हीं बिम्बों को सहृदय तक प्रेषित करती है, जिन्हें उसकी कल्पना अनुभूतियों के स्तर पर ग्रहण करती है।'<sup>3</sup>

### (3) भाव :

भावनाओं की भित्ति पर ही बिम्ब के रंग-बिरंगे चित्र चित्रित किये जा सकते हैं। इसी के द्वारा काव्य अपने मार्मिक और भावुकतापूर्ण स्वरूप में मुखरित हो उठता है। इसके लिए बिम्ब को माध्यम बनाना पड़ता है। बिम्ब सदैव भाव का उपकार उसकी अनुभव गम्य व्यंजना के द्वारा करता है और भाव सदा रूपायित

1- जायसी की बिम्ब योजना- डॉ० सुधा संकोना, पृ० 38, 39 से उद्धृत।

2- जायसी की बिम्ब योजना- डॉ० सुधा संकोना, पृ० 38 से उद्धृत।

3- निराला के काव्य बिम्ब और प्रतीक- वेदव्रत शर्मा, पृ० 40-41

होने के लिए अथवा आस्वादीय बनने के लिए बिम्ब के माध्यम से प्रकट होता है।<sup>1</sup> भावमय वर्णन में दार्ष्टिक अनुभूति ही कार्य करती है। अर्धवतनावस्था में उत्पन्न होनेवाली आकस्मिक अनुभूति ही भावपूर्ण चित्र प्रकट करती है। एजरा पाउण्ड का विचार है कि - बिम्ब एक निश्चित समय में भावनात्मक और बौद्धिक विचारों को प्रकट करता है।<sup>2</sup> कवि के हृदय से आकस्मिक उद्बोधन का परिणाम ही बिम्ब के रूप में आता है। आलोचक काडवेल ने भी बिम्ब की भावात्मकता पर बल दिया है और कहा है - वस्तुतः यही भाव का आरोपण-काव्य की वस्तु को साधारण वस्तु से पृथक् करता है और उसे विशिष्ट बनाता है। यह भावात्मक विशिष्टता सदैव ही चित्रमयता के मूल में विद्यमान रहती है।<sup>3</sup>

#### (4) आवेग :

बिम्ब में आवेग का होना अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ पर आवेग का अर्थ कवि के अपने व्यक्तित्व प्रकाशन से है। जब तक कवि स्वयं अपने आप उपस्थित न होगा तब तक वह वर्णन काव्य की श्रेणी में नहीं आ सकता। कवि स्वयं को अपनी रचना से अलग नहीं रख सकता। वर्णन में तटस्थता के कारण मार्मिकता नहीं आ सकती। अन्य विधाओं (इतिहास आदि) में तटस्थता होने के कारण ही काव्य से पृथक् हो जाती है। जैसे- इतिहासकार इतिहास लिखते समय पूर्णतया तथ्यों पर अवलंबित होता है उस समय किसी घटना से प्रभावित होने पर हृदय में उठने वाले भाव वर्णित नहीं कर सकता, यथातथ्य घटनाओं का उल्लेख कर कर देना होता है। परन्तु काव्य का वर्णन आवेग पूर्ण मनःस्थिति में ही सम्भव हो सकता है। सृजन

1- जायसी की बिम्ब योजना- डॉ० सुधा सक्सेना, पृ० 16

2- वही- पृ० 39 से उद्धृत।

3- जायसी की बिम्ब-योजना- डॉ० सुधा सक्सेना, पृ० 40 से उद्धृत।

करते समय वह अपने आप को भूल जाता है, अपना व्यक्तित्व पात्रों में तिरौभूत करके ही अपनी रचना में प्राणवता ला सकता है। यही आवेगपूर्ण स्थिति बिम्ब के लिए भी अनिवार्य है।

### (5) ऐन्द्रियता :

ऐन्द्रियता की अनुकृति बिम्ब की आवश्यक शर्त है। बिना ऐन्द्रियता के बिम्ब विशिष्टता नहीं प्राप्त कर सकता और विशिष्टता के अभाव में बिम्ब का अस्तित्व सम्भव नहीं। मानव जीवन में दृश्येन्द्रिय प्रमुख है और यही काव्य में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है। इसी के आधार पर दृश्य सम्बन्धनाओं से युक्त बिम्ब बनते हैं। ऐन्द्रिय सम्बन्धनायें ही काव्य वर्णन में विशिष्टता प्रदान करती हैं। ऐन्द्रियता का संस्पर्श जितना अधिक होगा उस कवि का काव्य उतना ही अधिक मार्मिक तथा प्रभावशाली बनेगा। उद्येशंकर श्रीवास्तव ने इस पर विचार प्रकट करते हुए बताया है - 'सर्जात्मक कल्पना-शक्ति से ही बिम्ब रचित होते हैं, जिसमें ऐन्द्रियानुभूतियों का योग साधन रूप में रहता है।'<sup>1</sup>

इस तरह हम देखते हैं कि बिम्ब का निर्माण केवल कल्पना, केवल अनुभूति, केवल भाव या केवल आवेग और ऐन्द्रियता के बल पर ही नहीं होता, वरन् इन सभी के सहयोग से ही सम्भव है। बिम्ब में उपर्युक्त सभी तत्वों की संश्लिष्टता का होना आवश्यक है तभी बिम्ब उत्कृष्ट व प्रभावपूर्ण बनेगा।

लक्षपतिमससिन्धु में बिम्ब विधान :

बिम्ब विधान की विवेचना करने की प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य में पश्चिम

से प्रभावित होने पर अहं है। बिम्ब के जनक मूर्तिकार ह्यूल्म और नेता एनरा पाउण्ड के नेतृत्व में विकसित होकर वह आज सर्वत्र स्वीकृत हो चुका है। आज आवश्यकता इस बात की है कि समय के साथ-साथ हम प्राचीन कवियों के काव्य को भी आधुनिक दृष्टिकोण से परखें। तत्कालीन प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में देखने के अतिरिक्त समय-समय पर बढ़ते हुए प्रतिमानों एवं मूल्यों की दृष्टि से भी परखना चाहिए। बिम्ब विधान के सम्बंध में भी यही बात कही जा सकती है। बिम्ब काव्य की शाश्वत विवेचन प्रणाली ही है। प्राचीन काल के कवि बिम्ब के प्रति प्रयास नहीं करते थे वह अनायास ही तालाब में खिल उठने वाले कमल के सौन्दर्य की भाँति प्रस्फुटित हो उठता था। परन्तु आज उसी को सप्रयास प्रयुक्त किया जाता है। यह प्रयास मानव के विकासशील स्थिति का द्योतक है। मनुष्य अपनी वर्तमान परिस्थिति से कमी भी सन्तुष्ट नहीं रहता। अपने चारों ओर दाण्ड प्रतिकाण होने वाले परिवर्तनों से प्रभावित होकर उनको अपनाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। इस प्रयत्न के परिणामस्वरूप ही मानव आज उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा है। इसके पीछे उसकी नावीन्य के प्रति ललक व उत्सुकता ही कार्य करती है। इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण पाश्चात्य आलोचना से प्रभावित होकर पौर्वात्य आलोचना शास्त्र में बिम्ब, प्रतीक इत्यादि का स्थान मिल गया है।

कुँवरकुशल कृत 'लक्ष्मि जससिन्धु' का अनुशीलन इस दृष्टि से भी अपेक्षित प्रतीत होता है। अतः अब हम 'लक्ष्मि जससिन्धु' में बिम्ब की स्थिति पर विचार करेंगे -

कवि अपने काव्य में बिम्बों का प्रयोग कौन प्रकार से करता है। जिनमें से एक है वातावरण को उपस्थित करना। कवि अपना वर्णन कुछ इस प्रकार करता है जिससे उसके आशय के साथ-साथ सम्पूर्ण वातावरण भी उपस्थित हो जाता है। इससे वर्णन में चित्रात्मकता का गुण आ जाता है। मानो वह कथन ही साक्षात्स्वरूप

धारणा करके जा गया हो। प्रियतमा के मन में प्रिय का संग प्राप्त करने की ललक सदैव बनी रहती है। इस ललक में प्राकृतिक उपादान अग्नि में घी का काम करते हैं। जब सुन्दर चैत मास में चन्द्र की चौदनी छिटक रही हो, पवन भी मदमस्त कर देने वाला हो और वातावरण में फूलों की सुगन्ध बिखरी हुई हो तो ऐसे समय में प्रिय से मिलने की उत्कण्ठा और भी अधिक बढ़ जाती है। इस तथ्य को प्रकट करने में एक मादक बिम्ब उपस्थित हो गया है -

सुम चैत चंद उजास मद पान फूल सुवास ।  
सुष्ठा सेज पे प्रिय संग रचि हो कबै विधि पण्य रंग ॥<sup>1</sup>

इसी भाँति सुहावनी बसन्त ऋतु हो, फूलों की सुगन्ध फैल रही हो और अम्बवा की डाली पर कोयल भी कुहक रही हो, ऐसे लुभावने समय में प्रियतम न हो तो हृदय में एक हूक, एक टीस सी उठने लगती है। कोयल मदमस्त होकर गा रही हो, आम के बौर पर भौरें गुँजार कर रहे हों, कामदेव भी शरीर को पीड़ित किए हुए हों तो ऐसे समय में प्रियतम की अनुपस्थिति अत्यन्त कष्ट देनेवाली होती है। कुँवरकुशल ने निम्नांकित बिम्ब में उतार दिया है -

बनि फूल बास बसंत अहू न आवत कंत ।  
किय अंब कोयल कूक ह्यि मांफि हूकत हूक ॥  
बहु गान कोयल बाल मधु गुंज गुंज रसाल ।  
तन देत काम जु ताप प्रिय द्यौं न आवत आप ॥<sup>2</sup>

1- ल. ज. सि०, छन्द सं० 774

2- वही- छन्द सं० 775, 76

कृष्ण और गोपियों का रास रचाया जाना प्रसिद्ध है। इसी को चित्रित करते हुए कुमारकुशल कहते हैं -

हेरों री तुम हेरों आवें गोपाल रंग में ।  
ऐसे गोपी के गन घेरो जैसे परिलेख में बंदा ॥<sup>1</sup>

रास सङ्घ समूह-समूह रूप में रचाया जाता है। आकाश में चाँद भी तारों के समूह में ही सुशोभित होता है। यही बिम्ब कृष्ण और गोपियों के समूह के लिए कवि ने प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार गुणों को छोड़कर जो अङ्गुणों को ग्रहण करता है उसके लिए कहा कि माँ के स्तन का दूध छोड़कर हाथ से दूध पीया जाये। माँ का दूध बड़ा ही स्वादिष्ट तथा पोषिक होता है और हाथ से दूध पीये जाने में वह अत्यधिक आनन्द कहीं। इसी प्रकार गुणों को धारण करने वाला व्यक्ति परम आनन्द और सुख का अनुभव करता है, उसका मन सन्तुष्ट रहता है न कि अङ्गुणों को ग्रहण करने वाला व्यक्ति -

गुन तजि आँगुन गाही रसून को पय छाँडि जो करते पीवें ।<sup>2</sup>

महाराज लक्ष्मण सिंह की प्रमुखता को दर्शाने के लिए भी पारस और चाँद का बिम्ब प्रस्तुत किया है। पारस मणि के समान अन्य सभी हीरे व्यर्थ प्रतीत होते हैं और चन्द्रमा के प्रकाश के सम्मुख जुगुनओं का कोई महत्व नहीं होता। यहाँ पर कवि ने लक्ष्मण जी के प्रभाव को दर्शाना चाहा है जो कि बड़ा ही उचित बन पड़ा है -

1- ल. ज. सिं० पंचदश तरंग- छन्द-478

2- वही- छन्द सं० 504

श्री महाराज लषापति पारस पाय के और नगिना बिसारे ।  
संमुष्ण चांद सदा कुवरेस तौ वाक कहा करे भीर बिचारे ॥<sup>1</sup>

एक स्थान पर नायिका के विरह के भाव को और उत्तेजित करने वाले उपादानों की विनियोजना करके बिम्ब रूप में प्रस्तुत किया गया है -

बरही गन के जब बोल सुने, तब ते तन में दुष्ण पाल तने ।  
वहरात घने घन में डरिये, अब कंत नहें अलि क्यौ करिये ॥<sup>2</sup>

जिस प्रकार समुद्र में नाव के चलती है और वर्षा आ जाती है तो उसके पाल तान धिये जाते हैं उसी प्रकार इस शरीर रूपी नाव में भी प्रिय की अनुपस्थिति में जब बाक्यों की आवाज सुनी तो दुःख रूपी पाल तान लिये अर्थात् वियोगावस्था में प्रिय स्मृति के आने पर मन दुःखित हो उठता है ।

इसी प्रकार शरद ऋतु में चन्द्रमा की धृति और चाँदनी में कृष्ण चलने की बात कहे तो अनुचित जान पड़ती है । यहाँ पर दुति और 'जोन्ह' दो शब्दों का एक साथ प्रयोग किया गया है । दुति का अर्थ यहाँ पर सुख के लिए है और जोन्ह शब्द अनुकूल समय के लिए आया है -

सरद ऋतु सही ये काहन देषो सदाह, ससि दुति सुष्णदाह जोन्ह नीति सुहाह ।  
कलन समय कसौ चित्त में यो विचारो, धरि मुकुट रसिले गोपिये संग धारो ॥<sup>3</sup>

1- ल. न. सिं० हृन्द सं० 646

2- वही- हृन्द सं० 822

3- वही- हृन्द सं० 857

बिम्ब निर्माण के लिए एक अन्य आवश्यक शर्त उसकी परिचितता है। कवि चाहे किसी भी प्रकार का बिम्ब प्रस्तुत करे जब तक पाठक उससे परिचित नहीं होगा तब तक पाठक कभी भी कवि की वांछित मनोभूमि तक नहीं जा सकेगा और न ही उसके भाव को पूर्णतया हृद्यंगम कर सकेगा। इसलिए बिम्ब की परिचितता का होना अत्यन्त आवश्यक है। बिम्ब के परिचित होने पर पाठक सहज ही कवि के आशय को समझ सकेगा। इसलिए कवि को सर्वत्र परिचित बिम्ब-विधान की ही विनियोजना करनी चाहिए। कुँवरकुशल कृत लक्ष्मि जससिन्धु के बिम्बों को देखते हैं तो उनमें सर्वत्र परिचितता का गुण मिलता है। अपनी मातामिव्यक्ति के लिए कुँवरकुशल ने जिन बिम्बों की सृष्टि की है वे जाने-पहचाने ही हैं इसलिए हम उन्हें शीघ्र ही समझ लेते हैं। जैसे :- प्रस्तुत उदाहरण में कुँवरकुशल ने लक्ष्मि जी के प्रताप को बताने हेतु सुमेरु पर्वत और उसकी दृढ़ता को बताया है। यह बिम्ब विधान परिचित है इसलिए सुमेरु पर्वत का उल्लेख आते ही हम उसकी विशालता और अवलता की ओर आकर्षित हो जाते हैं और उसी के अनुरूप रूप साम्य और गुण साम्य के आधार पर लक्ष्मि जी के प्रताप को जो चारों ओर फैला हुआ है शीघ्र ही हृद्यंगम कर लेते हैं -

उद्धत प्रताप जाको अग्नि सुदृढ़ सुमेरु सरूप हुआ ।

महाराज लक्ष्मिपति नृपसहित दीप देशल राउ सुअ ॥<sup>1</sup>

इसी प्रकार महाराज लक्ष्मिसिंह और उनकी गोपिकाओं के लिए बड़ा ही सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किया है जिसमें धर्मसाम्य देखने को मिलता है। कृष्ण गोपियों के साथ रास चन्द्रमा की चाँदनी के तले ही रचाते थे। इसी प्रकार लक्ष्मि जी भी

कृष्णवत् गायिकाओं हूयी गोपियों के साथ रास मण्डल बनाये हुए हैं। कभी केवल चाँदनी की थी। वह भी जेत(चाँदनी) नामक नायिका की उपस्थिति से पूर्ण हो गई। यह बिम्ब सर्व परिचित ही है। इसलिए सहज ही हृद्यग्राही बन गया है -

गोपिनि गहनि गिरिघर सुरपति लषापति पाटंत ।  
बन्धो रास मंडल बनक जौन्ह सरद की जेत ॥<sup>1</sup>

बिम्ब विधान की सृष्टि करते समय कवि के लिए औचित्य का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। कवि जो कुछ वर्णन करे, औचित्यपूर्ण है, उक्ति में साम्यता का गुण हो। यदि उचित वर्णन नहीं होगा तो पाठक के हृद्य पर कभी भी प्रभाव नहीं डाल सकेगा, चाहे भाव कितना ही मार्मिक क्यों न लिया हो। इसलिए औचित्यपूर्ण वर्णन यदि साधारण होगा तब भी प्रभावित किए बिना नहीं रहेगा। कुँवरकुशु ने इसका (औचित्य) ध्यान रखा है। जो कुछ वर्णन करना चाहा है उसके अनुरूप ही बिम्ब भी प्रस्तुत किया है। जैसे -

काल करवाल महा अंबु बाह को प्रकाशि,  
उमड़ी घटा की घटा चाप को चढायो है ।  
बर बंड बीर हंक गाज की अजाजि साजि,  
उग, अनिरुद्ध असो वास दरसायो है ॥  
धरी एकुं आंषि न उघारै मवी फराफरी,  
धुधुरित आसमान अग्न तम छायो है ।  
वे लषाधीर जहाँ धारा जल के प्रवाह  
अरि को प्रताप वहिन फल में बुकायो है ॥<sup>2</sup>

1- ल. ज. सि० पु. त. <sup>पु. त.</sup> कुन्द सं० 138

2- वही- षाष्ठ तरंग, कुन्द सं० 77

पानी का गुण है कि अग्नि को शीघ्र ही बुझा देता, उसी प्रकार लक्ष्मि जी भी युद्ध रूपी जल के द्वारा अपने शत्रुओं की प्रतापाग्नि को ज़ाण मर में ही बुझा देते हैं। यहाँ पर औचित्यपूर्ण वर्णन है क्योंकि गुण साम्य के आधार पर जल का अग्नि को बुझाने और लक्ष्मि जी का भी शत्रुओं की प्रतापाग्नि को बुझाने में औचित्य है। कवि को वर्णन करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अधिक से अधिक शब्दों का प्रयोग करे। कम शब्दों के माध्यम से भी अधिक भावामि-व्यक्ति कर सकता है और इसी में कवि की सफलता का रहस्य छुपा हुआ है। इस सम्बंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन द्रष्टव्य है - 'कविता की भाषा का एक मुख्य तत्त्व भाव चित्रों अथवा बिम्बों का विधान है। कवि परम्परा में स्वीकृत भाव चित्रों का प्रयोग अधिक नहीं करता, आवश्यकता पड़ने पर सामान्य से सामान्य शब्द के आधार पर अपना दृच्छित भावचित्र स्वयं निर्मित करता है। काव्य में सामान्य अर्थ बोध से ऊपर उठकर वह अपने अनुभव से सम्पृक्त करके किसी भी शब्द को एक विशिष्ट अर्थ देता है।<sup>1</sup> इसी विशिष्टता<sup>की</sup> प्रदान करने में कवि की कुशलता निहित है। कुँवरकुशल ने भी इस प्रकार के सफल प्रयोग किये हैं। उदाहरणतः -

आम्लि साहनि तँ अकसि साहनि तँ सुसनेहु ।  
साहनि जैसी साहेबी कुँ साहि के गेहू।<sup>2</sup>

यहाँ पर साहनि जैसे शब्द का प्रयोग हुआ है जो लक्ष्मि जी के व्यक्तित्व, लक्ष्मि जी के स्वभाव, लक्ष्मि जी के रहन-सहन सभी को एक साथ अभिव्यक्त कर दिया है। 'अकसि' शब्द 'अक्स' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ होता है व्यक्तित्व।

1- मध्यकालीन हिन्दी काव्य-भाषा-रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० 15

2- ल. ज. सि० प्र. त. कन्द सं० 105

साहि शब्द पातिस्याह अर्थात् बादशाह के अर्थ में है। राजा तो है ही परन्तु उनका व्यक्तित्व भी राजा अर्थात् बादशाह के अनुरूप भव्य और विशाल तथा प्रभावित करने वाला है। साहिन तै सुसनेहु का अर्थ अपने बराबर के लोगों से स्नेह करते हैं अर्थात् उच्च वर्ग से सम्बंधित है और उच्च वर्ग के लोगों में ही व्यवहृत होते हैं, उनसे मिलते-जुलते हैं और कच्छ देश में बादशाहों जैसी साहेबी है अर्थात् उनका रहन-सहन, उनका घर (महल) भी सुन्दर भव्य तथा घन संपत्ति से सम्पन्न है। साहेबी अर्थात् हर प्रकार के रेशो-आराम जहाँ पर सुख सुलभ हो, आज्ञा पालन करने के लिए सेवक हाथ बाँधे खड़े हों, उनके एक ही इशारे पर तुरन्त ही सब कुछ करने के लिए तत्पर हों। ऐसे लक्षपति जी हैं। यहाँ पर लक्षपति जी की भव्यता, घन-सम्पन्नता, उच्चाभिः, उच्च रहन-सहन तथा प्रभावित करनेवाले व्यक्तित्व सभी को एक साथ ही वर्णित कर दिया है और यह सब केवल एक शब्द 'साहिन' के सफल प्रयोग द्वारा हुआ है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कुँवरकुश ने 'लक्षपतिजससिन्धु' में अनेक सुन्दर बिम्बों की योजना की है। इनका बिम्ब विधान भावामिव्यक्ति को पूर्ण रूप से मुखरित करने में सहायक हुआ है वह भावानुकूल वातावरण को उपस्थित कर देता है। इन बिम्बों में परिचितता का गुण विद्यमान नहीं है तथा वह औचित्यपूर्ण भी है। यह एक तथ्य है कि लक्षपतिजससिन्धु का बिम्ब विधान उस रूप में उतना प्रभावशाली नहीं प्रतीत होता जितना कि अत्याधुनिक काव्य का बिम्ब विधान। आज कविता में बिम्ब विधान एक अनिवार्य तुक सा बन गया है और इस के लिए कवि को प्रयास करना होता है। कुँवरकुश ने वातावरण की सृष्टि करने हेतु जो शब्द विधान किया है वही वस्तुतः बिम्ब विधान की संज्ञा ग्रहण करता है।

लक्षपति जससिन्धु में लय :

लक्षपति जससिन्धु में लयात्मकता देखने से पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि काव्य और संगीत के सम्बंध तथा लय के अर्थ पर सामान्य चर्चा कर लें।

काव्य और संगीत :  
 ००००००००००००००००००००

यों संगीत का महत्व नृत्यकला में अत्यधिक है परन्तु काव्य कला में भी संगीत का महत्व कुछ कम नहीं है। काव्य के लिखित स्वरूप में भी संगीत को महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है। कवि अपने भावों को छन्दबद्ध करके कविता के रूप में प्रस्तुत करता है। कविता में कवि के भावों का प्रकाशन होता है और उसमें संगीत तत्व का समावेश करके उत्तमोत्तम स्थिति में लाया जाता है। इन दोनों के सम्मिश्रण के महत्व को स्वीकार करते हुए मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं कि -

केवल भावमयी कला,  
 ध्वनिमय है संगीत।  
 भाव और ध्वनिमय उभय,  
 जन्म कवित्व जय नीति ॥<sup>1</sup>

संगीत के समावेश से काव्य शीघ्रता से ग्रहण किया जा सकता है और वह <sup>प्रकृति</sup> प्रकृति में भी बराबर बना रहता है। संगीत जनमानस को सदैव आकर्षित करता है। कर्णाप्रिय होकर सीधे हृदय पर प्रभाव डालता है और श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर अपनी <sup>सुख, पुरस्कार, अनुभूति को प्रेरित</sup> प्रभाव डालता है <sup>जाता है</sup> अपने निग को, अपनी वैयक्तिकता को त्याग देता है और अलौकिक आनन्द का रसास्वादन करता है। यह सब इसलिए होता है क्योंकि संगीत में तन्मयता का गुण अत्यधिक मात्रा में होता है। इसलिए जब काव्य में संगीत का समावेश किया जाता है तो सोने में सुहागा बन जाया करता है। उसका सौन्दर्य द्विगुणित हो उठता है और पाठक को तन्मय करके उस अलौकिक आनन्द का अनुभव कराता है। डॉ० उषा गुप्ता

1- हिंदी के कृष्ण मन्तिकालीन साहित्य में संगीत- डॉ० उषा गुप्ता, पृ० 81 से उद्धृत।

का कथन है कि- 'काव्य में निहित संगीत तत्त्व उसके आह्लादकारी प्रभाव और महत्त्व को द्विगुणित कर देता है। वह मानव हृदय में अलौकिक आनन्द का उद्रेक करता है। अतः कविता का संगीतमय रूप नष्ट कर देना उसकी दिव्य शक्ति का ह्रास कर देना है।'<sup>1</sup>

काव्य और संगीत को विलग नहीं किया जा सकता। दोनों का अन्योन्यप्रय सम्बन्ध है। काव्य और संगीत दोनों एक दूसरे के पूरक व एक दूसरे के सौन्दर्य को बढ़ाने वाले हैं। इस सम्बन्ध में श्री श्री आँकारनाथ ठाकुर का कथन है कि - 'मेरी समझ में नहीं आता कि साहित्य संगीत के उस ताने-बाने को किस प्रकार अलग किया जा सकेगा। दूध में मिला पानी जब तक दूध में मिला है तब तक दूध के रूप में ही बिकता है और बिकता।'<sup>2</sup> जहाँ एक ओर संगीत के द्वारा काव्य में श्रवणाप्रियता की वृद्धि होती है वहीं दूसरी ओर संगीत के द्वारा नाद सौष्ठव की भी सर्जना की जाती है ताकि मनोभावों को और भी सुचारु रूप से प्रस्तुत किया जा सके। इसके सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है - 'काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिस प्रकार मूर्त विधान के लिए कविता चित्र-विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है उसी प्रकार नाद सौष्ठव के लिए वह संगीत का कुछ-कुछ सहारा लेती है। नाद-सौष्ठव से कविता की आयु बढ़ती है।'<sup>3</sup> इसी प्रकार संगीत और काव्य के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए आचार्य ललिताप्रसाद जी सुक्ल कहते हैं कि - 'सरस शब्दावली और भावनाओं के सजीव चित्रण जब ताल और स्वर में बँध कर या किसी अन्य ऐसे ही विधान में सजकर व्यक्त होते हैं जिनके द्वारा आंतरिक समन्वय की प्रतिस्थापना हो जाती है और रस का प्रवाह उमड़ने लगता है तो उसे ही काव्य या संगीत कहते हैं।'<sup>4</sup>

1- हिंदी में कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत-डॉ० उषा गुप्ता, पृ० 82

2- वही- पृ० 83 से उद्धृत।

3- चिन्तामणि प्रथम भाग- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 179-80

4- हिंदी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत-डॉ० उषा गुप्ता, पृ० 81

से उद्धृत।

अतः हम कह सकते हैं कि काव्य जब संगीत के हनुभुन करते आवरण में स्वयं को लपेट लेता है, जब सुरिले और मादक सुरों के साथ सबकर हमारे सम्मुख आता है तो उसके षष्ठ्य सौन्दर्य में चार चाँद लग जाते हैं। कवि के मनोद्वार संगीत का नामा पहन लेते हैं तो उनमें आकर्षित करने की शक्ति और भी घनीभूत हो जाती है और पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। लगता है जैसे कोई नवबधू पारों में पायल पहने कूमकूम करती सधे कदमों को उठाती हुई धीरे-धीरे आसुर हो रही है। और दूर से ही अपने आगमन की सूचना दे रही हो जिससे धूँधट (काव्य में माषा अथवा शब्दों का आवरण) में कुपे हुए सौन्दर्य को देखने की लालसा व उत्सुकता और अधिक बढ़ जाती है।

### लय का अर्थ :

लय की निष्पत्ति गति, प्रवाह और यति, विराम के पारस्परिक एवं क्रमिक संघात से होती है। लय का स्वरूप आवृत्तिमूलक होता है अर्थात् लय के लिए शब्दों की पुनः पुनः आवृत्ति की जाती है। इसके साथ ही लय कालसापेक्षा भी होती है। लय को किसी भी कालविशेषण से नहीं बाँधा जा सकता। जब हम लय को काव्य के साथ जोड़ते हैं तो अमरोदा रूप से संगीत की प्रधानता को मान्यता प्रदान करते हैं। लय संगीत का एक अंग ही है। अतः लय के साथ काव्य का सम्मिश्रण मोहक बन जाया करता है। लय अर्थात् स्वरों के आरोह-अरोह की व्यवस्था से सम्पन्न एक पद्धति है। इसके माध्यम से भावोत्कर्ष में फ्यपित सहायता मिलती है और षष्ठ्य भाव अपूर्व गति से प्रवाहित होने लगते हैं। लय के आधार पर की गई भाव-योजना में अपूर्व सामंजस्य विद्यमान रहता है। इससे सरसता और मार्मिकता का समावेश स्वतः ही हो जाता है। यों तो काव्य स्वयं ही सरस और

मार्मिक होता है परन्तु जब उसे लय के साथ प्रस्तुत किया जाता है तो इन गुणों में और भी वृद्धि हो जाती है। इस सम्बन्ध में डॉ० उषा गुप्ता का उद्धरण प्रस्तुत करना समुचित जान पड़ता है - 'कविता में लय का बंधन संगीत की महत्ता की स्वीकृति का ही लक्षण है। ताल, लय और स्वर द्वारा संगीत में हमारे मनोभावों को तरंगित करने की अद्भुत क्षमता है। अतः कविता लय के माध्यम से संगीत का अश्रय ग्रहण करके हमारे मनोवेगों को तीव्र भाव से जागृत और उत्तेजित कर देती है। लय काव्य को स्वाभाविक रूप से संगीतात्मकता प्रदान करती है और अपनी इस किंचित संगीतमयता के कारण माधुर्य और सरसता तो भावों के साथ लाती ही है साथ ही एक प्रवाह शक्ति और लोच भी उत्पन्न कर देती है।'<sup>1</sup>

इश्वरीय सृष्टि स्वयं एक प्रकार की लयात्मकता से सन्निविष्ट दृष्टिगत होती है। काव्य में भी लय की प्रधानता को स्वीकार करते हुए धर्मेन्द्र भारती कहते हैं कि - 'शब्दार्थमयी कविता का इस लय-तत्व से जन्मजात सम्बन्ध है जो मूलतः इतना घनीभूत एवं व्यापक है कि लय को कविता का एक अनिवार्य अंग स्वीकार किये बिना उसके संपूर्ण स्वरूप की व्याख्या करना कठिन होता है।'<sup>2</sup> जहाँ हम एक ओर काव्य में प्रवाहमानता के गुण को स्वीकार करते हैं वहीं अपरोक्ष रूप से लय के अस्तित्व को भी स्वीकार कर लेते हैं। अतः लय की निहित काव्य में अत्यन्त आवश्यक है।

### लय के भेद :

काव्य शब्द और अर्थ दोनों के एकात्मक स्वरूप पर आधारित होता है।

- 
- 1- हिन्दी कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में संगीत- डॉ० उषा गुप्ता, पृ० 332
- 2- कवितान्तर - सम्पा० डॉ० जगदीश गुप्त, पृ० 25 से अद्वैत

शब्द और अर्थ दोनों के लिए विशिष्ट स्थान है। जब तक शब्द और अर्थ दोनों अपना भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते हैं तब तक काव्य की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकते हैं। दोनों की अभिन्नता का होता काव्य में अत्यन्त आवश्यक है। इसी काव्य में अर्थ शब्द-निरपेक्षा होकर बौद्धिकता परक होता है जबकि शब्द अस्वपोन्नित्य पर आधार रखता है। इसी आधार पर लय के दो भेद किये गये हैं - शब्द-लय तथा अर्थ-लय।

### शब्द-लय :

शब्द-लय में छन्द-योजना पर बल दिया जाता है। भावानुरूप छन्द-योजना करने पर भाव और अधिक सौन्दर्यवान् बन जाता है और निरवरोध पूर्वक प्रवाहमान होने लगता है। भावानुकूल तथा रसानुकूल ही छन्द-योजना करने में कवि के सामान्य ज्ञान का पता चलता है। शब्द-लय काव्य के बाह्य स्वरूप को प्रगट करती है। जिस प्रकार किसी सुन्दरी की लुभावनी चाल उसके सौन्दर्य को द्धिगुणित कर देती है उसी प्रकार काव्य में भी उचित छन्द-योजना कवि के अन्तस् से प्रगट होने वाले भावों के सौन्दर्य में श्रीवृद्धि करती है। यदि इस प्रकार छन्द-योजना न होगी तो भाव पूर्णतः मुस्तरित नहीं होने पायेगा और अपनी आकर्षण शक्ति खो बैठेगा। इसी कारण शब्द-लय का महत्व काव्य में स्वीकार किया गया है। शब्द-लय काव्य को लिखने की विधि की परिचायिका है। इतना ही नहीं शब्द-लय बाह्य स्वरूप को दर्शन के साथ-साथ काव्यार्थ को प्रस्फुटित करने में भी सहायक होती है। सुन्दर शब्द-लय के आधार पर अर्थ की निष्पत्ति शीघ्र ही हो जाती है। शब्द-लय में एक प्रकार की शाब्दिक विनियोजना भी होती है। शाब्दिक विनियोजनाओं में शब्दों का कलात्मक ढंग से प्रयोग किया जाता है, उचित स्थान पर उचित शब्द प्रयोग करना ही शब्द-लय का आधार है। इससे जहाँ भावों का प्रकाशन कवि के लिए सल्ल बन जाता है वहीं पाठक को अर्थ-बोध में भी सहायता मिलती है।

शब्दों का बिखराव न होकर शब्दों का उचित गठन अर्थ को प्रस्फुटित व अभिव्यक्त कर देता है। इससे पाठक कवि की उसी भावभूमि पर पहुँच जाता है जहाँ पर कवि पहुँचाना चाहता है। शब्दों में एक प्रकार की संगीतात्मकता का होना ही शब्द-लय की उपस्थिति का सूचक है। जिस प्रकार सुन्दरी के पैरों में बँधे घुँघरू मधुर स्वर उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार शब्द-लय भी कविता-कामिनी की चाल अथवा गति में लोच उत्पन्न करती है।

शब्द-लय में अनुप्रास पर विशेष बल दिया जाता है। छन्द में एक ही समान और एक ही वजन के शब्दों को स्थान मिलता है जिससे एक प्रकार के संगीत का आविर्भाव होता है और साथ ही कर्णप्रिय बन जाता है। वर्ण-मैत्री की ओर भी ध्यान दिया जाता है। कवि वर्ण इस प्रकार के प्रयुक्त करता है कि उनमें एक समानता दृष्टिगत होती है। रसानुकूल वर्णों का प्रयोग करके उसकी गति को त्वरितता प्रदान करता है। इसीलिए जहाँ एक ओर शृंगारपूर्ण वर्णन करने के लिए मधुर वर्णों का प्रयोग किया जाता है तो वीर रस आदि में आज वर्णों का समावेश किया जाता है।

### अर्थ-लय :

काव्य में शब्द-लय के साथ-साथ अर्थ-लय की भी महत्ता है। अर्थ-लय का अना अलग ही आकर्षण है। इससे कवि के मनोद्वार जो खिंचे हुए होते हैं, प्रगट हो जाते हैं। काव्य में जहाँ शब्द-लय के लिए छन्द आदि पर बल दिया जाता है वहीं अर्थ-लय में स्वरों के आरोह-अवरोह के गठन पर ध्यान दिया जाता है। स्वरों के क्रमिक विकास तथा भावनाओं की तीव्र गति और गहराई को व्यवस्थित रूप देने का कार्य लय द्वारा ही सम्भव है। लय की कविता के साथ आवयविक समन्वित इसीलिए होती है कि वह अर्थात् कविता मानव हृदय की गहराई और

भाव संवेगों की विशिष्ट दृष्टियों में आन्तरिक रूप से परिचालित गति का प्रतिफलन है। यदि यह स्थापना सही है तो निश्चय ही इस 'गहराई' से युक्त गतिशीलता का स्वरूप उस शब्दार्थ में अदृश्य ही लक्षित होना चाहिए जो उसका अनिवार्य धारक और माध्यम है।<sup>1</sup> काव्य में शब्द की तब तक सार्थकता सिद्ध नहीं होती जब तक कि वह अर्थ युक्त न हो। मात्र शाब्दिक सिलवाड़ु काव्य का स्वरूप निर्मित नहीं करता। हर शब्द तभी काव्य बन सकता है जब वह किसी अर्थ का बोधन करे। इसी अर्थ को समझने में लय भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अर्ह. ए. रिचर्ड्स ने अर्थ-लय को मानसिकतम चेतना की लय से सम्बोधित करते हुए कहा है - 'शब्द की लय, विचार करने पर, अन्ततः भाव और अर्थ की समष्टि में ही पहचानी जाती है जिसमें हमारी मानसिक चेतना की लय समाहित रहती है।'<sup>2</sup> इसी तरह स्टीफेन स्पेण्डर ने भी अपने अनुभव को व्यक्त करते हुए लिखा है - 'काव्य-रचना के दृष्टियों में जिस शब्द-संगीत को साधने का उपक्रम करता है वह कभी-कभी मुझे शब्दों से परे लेजाता है जहाँ मुझे केवल लय का, एक नृत्य का, एक तीव्र ऊर्जा का अनुभव होता है जो प्रायः शब्द शून्य होता है।'<sup>3</sup> शब्द-शून्य संगीत ही अर्थ-लय का द्वारा स्वरूप है। अर्थ की लय स्वतः ही उभर कर आ जाने वाली है। अर्थ-लय काव्य की आन्तरिकता को प्रकट करती है। गद्य शैली में लिखा होने पर भी अर्थ-लय से सम्पृक्त काव्य अर्थ-लय को सहज ही प्रकट कर देता है। 'अर्थ की लय' एक ऐसी वास्तविकता है जिसका लोप छापने या लिखने की बाह्य विधि से सम्भव नहीं है।<sup>4</sup> काव्य में शब्द-लय का महत्व होते हुए भी उसका स्थान गौण ही होता है क्योंकि

1- कवितान्तर- सम्पादित- डॉ० जगदीश गुप्त, पृ० 25

2- वही- पृ० 25 से उद्धृत।

3- वही- पृ० 26 से उद्धृत।

4- वही- पृ० 28

काव्य अर्थ प्रधान है। इसमें एक स्थिति विशेष पर आकर शब्द की सत्ता का कोई महत्व नहीं रह जाता है। अर्थ निष्पत्ति के साथ ही शब्द अपनी सार्थकता खो बैठते हैं। <sup>रसका</sup> कार्य केवल अर्थ को सम्प्रेषित करना तथा एक निश्चित दिशा में प्रवाहित करना ही है। कविता को यदि केवल शब्द-लय की दृष्टि से परखा जाये तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। कविता का वास्तविक आनन्द तो अर्थ-लय के सहारे ही प्राप्त किया जा सकता है। इसी लिए धर्मवीर भारती का कथन है कि - कविता अपने मूल रूप में अर्थ-प्रधान है और संगीत तत्व अथवा शब्द-लय को वहीं तक ग्रहण माना जायेगा जहाँ तक वह काव्यार्थ को प्रस्फुटित करने में सहायक सिद्ध हो अन्यथा यदि वह कविता को आन्तरिक शक्ति प्रदान करने के स्थान पर उसके अर्थ को आच्छादित कर अथवा कुंठित करती है तो उसे अस्निग्ध रूप से अनपेक्षित मानना होगा।<sup>1</sup>

काव्य को पढ़ने की एक विशेष विधि है होती है। उस प्रकार की विशेष विधि से काव्य-पठन से ही अर्थ उभर कर आता है। यह विशेष विधि स्वरों के आरोह-अवरोह से संवाहित होती है। यदि इस ढंग से पाठन किया जायेगा तो मात्र एक अन्तर्ग प्रलाप ही सिद्ध होगा। अतः अर्थ निष्पत्ति के लिए सावधानी पूर्वक पढ़ना चाहिए।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि काव्य में अर्थ-लय की प्रधानता अधिक है। इस अर्थ-लय के द्वारा ही हम कवि के वाञ्छित अभिव्यक्ति से परिचित हो सकते हैं और उसका पूरा-पूरा आनन्द भी उठा सकते हैं।



शब्दकृत्य : द्रुत लय :

के रूप-चित्रण से सम्बन्धित हैं। नायिका  
इस प्रकार के उदाहरण नायक-नायिका की साज सज्जा तथा आं की  
शोभा का वर्णन प्रस्तुत उदाहरण में द्रष्टव्य है -

अंजन मंजन नैन सुरंजन कंजन षंजन दूर भों ।  
गात सुहात भ्ये परमात सुबात की घाट सष्तीन सगें ॥  
लाल वह बनमाल बिसाल ते रूप रसाल हिये पै जगें ।  
लाज के साज बनी सिरताज ये अण्डकु नाजुकी बालकी नीकी लगें ॥<sup>1</sup>

यहाँ पर श्रृंगार रस के अनुरूप कोमलावृत्ति तथा अनुस्वार का उपयोग किया गया है। इसी प्रकार कृष्ण के रूप चित्रण में भी कोमलावृत्ति व अनुस्वार का प्रयोग किया गया है। कुँवरकुशल ने नायक-नायिका के परस्पर प्रेम का चित्रण भी बड़ी ही सुन्दर शब्द-योजना द्वारा किया है जिनमें हृदय के एक-एक भाव मुखरित हो उठे हैं -

सररु की पून्हीं राति कान्ह आये राधिका के मंदिर मुदित मनमाहं म्हं  
जात है ।

हाथ जोरि सौरि सौरि मीठी बातें करै चुंबन करत चित चाहि सारसात है ।  
मिलै णिलै रंग क्लिहै आं आं में उमंग अंक भहै आपस में ज्यौहूँ न अपात है ।

1- ल न सिं० कृन्द 13

2- (अ) मोरन की पंषियां मुकुट निरषियां सषियां उर धारें ।

मुष्ण दिषत मुररि षम कमरियां धवरि गवया चारें ।

जसुमति को नैदा यदुकुल चंदा रास रमत रस रूप ।

रादासों को टारें सत उधारें भ्ये भक्त जनभूप ।

वही - चतुर्दश तरंग, कृन्द सं० 186

(ब) गुंजनि माल गरै सुरसह, पीत पटा अति सोभ सुहाह ।

मोरन की पंषियां सिरधारी आवत ये अलि कुंज बिहारी ॥

वही - कृन्द 793

पीय मुष्णि देष्णि देष्णि पीया परसन्न होत पीया मुष्णि देष्णि पीय नैन क्वकि  
जात है ।<sup>1</sup>

### मध्य ल्य :

इसमें प्रसाद गुण के अनुसार शब्द योजना की जाती है । सभी प्रकार के  
रसों के वर्णन में मध्य-ल्य की संयोजना की जा सकती है । कहीं पर कठोर वर्ण  
और कहीं पर कोमल वर्ण प्रयुक्त किए जाते हैं । 'लक्षपतिजससिन्धु' में इस प्रकार के उदा-  
हरण भी मिलते हैं । जैसे :-

केकी कोकिल भृंग के सुने श्रवनि तैं सार ।  
गढ़ धीरज ह्याह्यौ गुरुव कटक काम करि जोर ॥<sup>2</sup>

विरह के समय प्रिय की अनुपस्थिति में श्रृंगारोदीपक तत्व केकी , कोयल  
और मोरों की आवाज कानों को दुःखदायी प्रतीत होने लगती है । इस आवाज को  
सुनते ही कामदेव अपनी तलवार से नायिका के धीरज का गढ़ ढहा देता है अर्थात्  
धैरवान नायिका भी वियोगावस्था में काम भावना से पीड़ित होने लगती है । यहाँ  
पर दोनों प्रकार की वर्ण-योजना से नायिका की विरहानुभूति को और भी स्पष्ट  
करने का प्रयास किया गया है । इसी प्रकार महाराव लक्षपति जी की वीरता,  
उनकी विनम्रता, उनकी दीर्घ आयु के सम्बंध में मध्य ल्य का प्रयोग किया गया है ।<sup>3</sup>

1- वही- षष्ठ तरंग, कृन्द 8

2- ल. ज. सिं०<sup>द. २०</sup> कृन्द सं० २७

3- सूर सुघट संग सुमट, राह विकट रीति को ।  
रंग भरत , शत्रुमरत, जंग करत जीति को ॥  
राउ छय तनय, आं विनय, गंग सुनाय पेणिये ।  
कोटि बरस, आयु सरस, पाय दरस देणिये ॥

वही- चतुर्दश तरंग, कृन्द 294

### विलंबित लय :

इस प्रकार की लय में दीर्घ चरण तथा गुरु वर्णों का प्रयोग किया जाता है। पहला वृत्ति के अनुरूप कठोर पदावली अर्थात् ट, ठ तथा द्वित्व का प्रयोग होता है। वीर रस, वीभत्स रस, अद्भुत रस तथा रौद्र रस में इसकी निहित रहती है। लक्ष्मिणी की वीरता के समय का वर्णन द्रष्टव्य है -

साजि महागंज बाजि घटा उलझा क्ल वाक्ल बाजति नांबति ।  
तंबू सरहवे तोप कृमानं जुवानं कृमान गुमानं तैहि मति ॥  
अं करंवर बं रन तूर और सूर पै हूर सनूर करी दुति ।  
आगेहिं तै अरि आं गिरे घर पीछे चढाहं की है लणप्यति ॥<sup>1</sup>

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

सोहै लाषा संग लषा वजे नीसानं ।  
दात्री जोधा षूम जोर जंगी है जानं ॥  
सामां को है साह वेस में राजानि कां ।  
संभु को ये दास कछ को राजे नीकां ॥<sup>2</sup>

शिव जी का भी वीरतापूर्ण चित्रण किया गया है -

क्ली बरद चढि बावरौ रचित माल शिव हंडा ।  
घने असूलनि घावते तोरे दुर्जन तुंहु ।  
तोरे तुंडनि दृढ बरबंड निपूहृष्टे घर फल षंड ।  
थल मल कंद करि करि ग्रहनि अगटकंत ।  
म्लबनि मदन जगह जगानि क्ली बरद चढि ॥<sup>3</sup>

1- वही- कृन्द सं० 111

2- ल. ज. सि. चतुर्दश तरंग, कृन्द सं० 177

3- वही- कृन्द सं० 241

### अर्थ लय :

अर्थ लय में छन्द में निहित अर्थ की लय पर महत्व दिया जाता है, इसके द्वारा कवि के कथन को पहचानने का प्रयत्न किया जाता है। आंतरिक लय की निहित ही अर्थ-लय कहलाती है। कुँवरकुशल ने अपने ग्रन्थ लखपति जससिन्धु में अर्थ-लय का भी समावेश किया है। महाराज लखपति जी संगीत प्रेमी भी थे इसलिए उन्होंने मयाराम नामक संगीतज्ञ को अपने राज्यभ्रम में रखा था और उनके द्वारा गायिकाओं को विधिवत् संगीत की शिक्षा दिलाते थे। मयाराम बहुत ही कुशल वादक भी थे। मृदंग बजाते समय मृदंग के मुख पर उनकी उंगलियों का स्पर्श हो भी पाता है अथवा नहीं, यह समा के व्यक्ति निश्चित नहीं कर पाते थे अर्थात् वे इतनी तीव्रता तथा त्वरता के साथ बजाते थे कि लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे। 'लगति कि न लगति अरू लगति गति' के मन्थ्यम से शाब्दिक गति के साथ-साथ उनकी बजाने की गति का भी अहसास होने लगता है -

मयाराम की मुरज मुष्ण अरुरिनी अति नेह ।

लगति कि न लगति अरू लगति गति षड् गुरु संदेह ॥<sup>1</sup>

कृष्ण वियोग के कारण ब्रजवासियों की दशा किस प्रकार की हो गई है इसका उ भी चित्रण किया है -

कालिह गह ही में कूल कालिंदी के केकी न कोकिल कूक करौ ।

बाढि हिये दुष्ण ठाढे है ग्वाल और चित्र के काढे न गैया चरौ ।

बगलें ० छियें ० लुपटा ० बगलें ० लुपटा ०

आक्षी नहीं बनमाली उहाँ बनषाली वियोग तैं नैन भरै ।

बेली नहीं चमेली सु फैली है कुंज में मैलिकें फूलनि आंसू भरै ॥<sup>1</sup>

यहाँ पर यमुना-नदी के किनारे पहुँचते ही पक्षियों का कलरव सुनाई न पड़ना, ग्वालों का चित्रलिखित सा खड़ा होना, गायों का न चरना, स्मृति आने पर आँसुओं का आना, तत्पश्चात् पेड़ों की दशा का ज्ञान होना सारा वर्णन क्रमपूर्वक है। एक के पश्चात् एक क्रमशः भाव आये हैं इसलिए एक प्रकार की अर्थवृत्ता आ गई है। क्रम होने के कारण लयात्मकता का समावेश हो गया है। व्यक्ति पहले चेतन प्राणियों को सहज ही देख सकता है, उनके क्रिया कलापों का अवलोकन कर सकता है तत्पश्चात् अचेतन वस्तुओं पर भी दृष्टि जाती है क्योंकि वियोग में मनुष्य की भावना न केवल अपने तक सीमित रहती है वरन् वह अपने साथ समस्त वस्तुओं और प्राणियों को भी जोड़ लेता है। उसका उदार हृद्य सबके लिए, सहानुभूति प्रेषित करने लाता है। इसलिए ही यहाँ पर वर्णन भी इसी प्रकार का माधुर्यरूप बन पड़ा है। एक अन्य उदाहरण देखिए -

पीत पटा कटि पै लपटा क्वि लाल कटा गस गुंज की माला ।

है सुषा कंद सदा जग बंद अनंद भरे यह नंद के लाला ।

आये हैं आज सुधारन काज सिरी महाराज लियें संग ग्वालाला ।

देखि अली जिहा पंकज छ तैं मुषाचंद तैं बोलैगी राधिके बाला ॥<sup>2</sup>

1- ल. ज. सिं० <sup>द.त.</sup> कन्द सं० 16

2- वही - <sup>अ.त.</sup> कन्द सं० 65

यहाँ पर भी क्रमबद्धता मिलती है। किसी भी सुन्दर व आकर्षित व्यक्ति को देखने पर सर्वप्रथम ध्यान उसकी वेशभूषा पर ही जाता है। बाह्याकृति का अवलोकन करने पर ही भिन्न व्यक्ति के गुणों का स्मरण होने लगता है। तत्पश्चात् उनके साथ बातचीत करने की लालसा मन में जागृत होती है।

भावनायें हृदय में पूर्ण ही अस्थित रहती हैं परन्तु उन्हें और भी उदीप्त करने में वातावरण का भी बहुत कुछ हाथ रहता है। मन के भावानुरूप वातावरण होने पर भावों का उफान और भी अधिक बढ़ जाता है। कुछ इसी प्रकार का वर्णन कुँवरकुश ने यहाँ पर किया है। जब नायिका चेतन ही नहीं अचेतन में भी संयोगवस्था के दृश्य देखती है तो स्वयं को प्रियतम से अलग होने में कष्ट का अनुभव करती है इसलिए प्रियतम के गमन को उचित नहीं समझती है और कहती है कि अब प्रियतम क्यों जा रहे हैं अर्थात् ध्वनित यह हो रहा है उसे सुखद समय में प्रिय को नहीं जाना चाहिये -

गुर बेलि फूलनि पै करै अलि गुंज है, मधु मास अंबनि कौकिला सुर भंजु है।  
पुनि सीत मंद सुगंध लागत पाँन है, गुनवंत प्रीतम क्यों करे अब गौन है ॥<sup>1</sup>

निष्कर्षतः ~~हम~~ हम कह सकते हैं कि लक्षपतिजस सिन्धु में जहाँ एक ओर मानवीय भावनाओं तथा अनुभूतियों का गुण विद्यमान है वहीं उन भावनाओं तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में अनुकूल शब्द-व्ययन, रसात्मकता तथा मधुरता का समावेश भी देखने को मिलता है। ग्रंथ यहाँ तक कि आधुनिक दृष्टि से देखने पर बिम्ब-विधान की भी विनियोजना देखी जा सकती है। ग्रंथ में लयात्मकता का भी पर्याप्त समावेश विद्यमान है।